॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ अथर्ववेद संहिता ॥

॥ अथर्ववेद॥

॥ अथ चतुर्थ काण्डम्॥

श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन
॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

विषय सूची

सूक्त १- ब्रह्मविद्या सूक्त 6

सूक्त २- आत्मविद्या सूक्त 10

सूक्त ३- शत्रुनाशन सूक्त 15

सूक्त ४- वाजीकरण सूक्त 18

सूक्त ५- स्वापन सूक्त 22

सूक्त ६- विषघ्न सूक्त 26

सूक्त ७- विषनाशन सूक्त 30

सूक्त ८- राज्याभिषेक सूक्त 34

सूक्त ९- आञ्जन सूक्त 38

सूक्त १० – शङ्खमणि सूक्त 43

सूक्त ११- अनड्वान् सूक्त 47

सूक्त १२ – रोहिणी वनस्पति सूक्त 54

सूक्त १३ – रोग निवारण सूक्त 58

सूक्त १४ – स्वज्र्योति प्राप्ति सूक्त 62

सूक्त १५ – वृष्टि सूक्त 67

सूक्त १६- सत्यानृतसमीक्षक सूक्त 76

सूक्त १७- अपामार्ग सूक्त 81

सूक्त १८- अपामार्ग सूक्त 85

सूक्त १९- अपामार्ग सूक्त 89

सूक्त २० – पिशाचक्षयण सूक्त 93
सूक्त २१ – गोसमूह सूक्त..... 98
सूक्त २२ – अमित्रक्षयण सूक्त 102
सूक्त २३ – पापमोचन सूक्त 107
सूक्त २४- पापमोचन सूक्त..... 111
सूक्त २५ – पापमोचन सूक्त..... 116
सूक्त २६ – पापमोचन सूक्त..... 120
सूक्त २७ – पापमोचन सूक्त..... 124
सूक्त २८ – पापमोचन सूक्त..... 128
सूक्त २९ – पापमोचन सूक्त 132
सूक्त ३० – राष्ट्रदेवी सूक्त..... 136
सूक्त - ३१- सेनानिरीक्षण सूक्त..... 141
सूक्त ३२ – सेनासंयोजन सूक्त..... 145
सूक्त ३३ – पापनाशन सूक्त 149
सूक्त ३४- ब्रह्मौदन सूक्त..... 153
सूक्त ३५ – मृत्युसंतरण सूक्त 158
सूक्त ३६- सत्यौजा अग्नि सूक्त..... 163
सूक्त ३७- कृमिनाशन सूक्त..... 168
सूक्त ३८ – वाजिनीवान् ऋषभ सूक्त 175
सूक्त ३९- सन्नति सूक्त..... 179

सूक्त ४० – शत्रुनाशन सूक्त 185

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त १- ब्रह्मविद्या सूक्त

बृहस्पति आदि देवों की स्तुति

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः
॥४,१.१॥

ब्रह्म की उत्पत्ति पूर्वकाल में सर्वप्रथम हुई । वेन (उस तेजस्वी ब्रह्म या सूर्या ने बीच में स्थित होकर सुप्रकाशित (विभिन्न पिण्डों) को फैलाया । उसने आकाश में वर्तमान विशिष्ट स्थानों पर स्थित पदार्थों तथा सत् एवं असत्की उत्पत्ति के स्रोत को खोला ॥४,१.१॥

इयं पित्र्या राष्ट्र्येत्वग्रे प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः ।
तस्मा एतं सुरुचं ह्वारमह्यं घर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे
॥४,१.२॥

पिता (परमपिता परमात्मा) से प्राप्त, विश्व में स्थित राष्ट्री (प्रकाशमान नियामक शक्ति) सर्वप्रथम उत्पत्ति सृजन के लिए आगे आए। उस सर्वप्रथम (सर्वोच्च सत्ता) को अर्पित करने के लिए इस सुप्रकाशित, अनिष्टनिवारक तथा प्राप्त करने योग्य यज्ञ को परिपक्व करे ॥४,१.२॥

प्र यो जज्ञे विद्वान् अस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान् निचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ
॥४,१.३॥

जो ज्ञानी इस (दिव्य सत्ता) का बन्धु (सम्बन्धी) होता है, वह समस्त देवशक्तियों के जन्म का रहस्य कहता हैं । ब्रह्म से ब्रह्म (वेदज्ञान अथवा यज्ञ) की उत्पत्ति हुई है । उसके नीचे वाले, मध्यवर्ती तथा उच्चभाग से (प्राणियोंको) तृप्त करने वाली शक्तियों का विस्तार हुआ ॥४,१.३॥

स हि विदः स पृथिव्या ऋतस्था मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत्।
महान् मही अस्कभायद्वि जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः
॥४,१.४॥

वह (परमात्मा) ही द्युलोक और पृथ्वीलोक को संव्याप्त करके शाश्वत सत्य नियमों के द्वारा उन बृहद् द्यावा-पृथिवी को अपने अन्दर स्थापित करते हैं। वह उनके बीच में सूर्यरूप से उत्पन्न होकर द्यावा-पृथिवी रूपी घर को अपने तेज से संव्याप्त करते हैं ॥४,१.४॥

स भुध्यादाष्ट्र जनुषोऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट्।
अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः
॥४,१.५॥

बृहस्पतिदेव इस लोक के अधिपति हैं। जब आलोकवान् सूर्य से दिन प्रकट हो, तब उससे प्रकाशित होने वाले ज्ञानी ऋत्विक् अपने-अपने कार्य में संलग्न हों और आहुतियों के द्वारा देवताओं की सेवा करें ॥४,१.५॥

नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम ।
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वे अर्धे विषिते ससन् नु
॥४,१.६॥

अत्विज् सम्बन्धी यज्ञ देवताओं में सर्वप्रथम उत्पन्न सूर्यदेव के महान् धाम को उदयाचल पर भेजता है । वह सूर्यदेव पूर्व दिशा सम्बन्धी प्रदेश में हविरन्न को लक्ष्य करके शीघ्र ही उदित होते हैं ॥४,१.६॥

योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुं बृहस्पतिं नमसाव च गछात्।
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कविर्देवो न दभायत्स्वधावान्
॥४,१.७॥

देवों के भाता बृहस्पतिदेव और प्रजापति अथर्वा के प्रति नमन है । जिस प्रकार आप समस्त जीवों को उत्पन्न करने वाले हैं, उसी प्रकार आप अन्न से सम्पन्न हों । वह क्रांतदर्शी बृहस्पतिदेव हविरन्न से युक्त होकर हिंसा न करते हुए सभी पर कृपा ही करते हैं ॥४,१.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त २- आत्मविद्या सूक्त

प्रजापति की प्रशंसा

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम
॥४,२.१॥

(प्रश्न है, हम किस देवता की अर्चना वि- समर्पण सहित करें ? उत्तर हैं) जो स्वयं का बोध कराने तथा बल प्रदान करने में समर्थ है, जिसके अनुशासन का पालन सभी देवशक्तियों करती हैं, जो दोपायों (मनुष्यादि) तथा चौपायों (पशु आदि) सभी का शासक है, उस 'क' संज्ञक आत्मतत्त्व का पूजन करें ॥४,२.१॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैको राजा जगतो बभूव ।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम
॥४,२.२॥

(किस देवता की अर्चना करें ?) जो प्राण धारियों तथा आँखें झपकने वालों (देखने वालों अथवा परिवर्तनशीलों) का एकमात्र अधिपति है, जिसकी छाया में अमरत्व तथा मृत्यु दोनों स्थित हैं, उसी की अर्चना हम करें ॥४,२.२॥

यं क्रन्दसी अवतश्चस्कभाने भियसाने रोदसी अह्वयथाम् ।
यस्यासौ पन्था रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम
॥४,२.३॥

(किस देवता का पूजन करें ?) जिसके कारण द्यावा-पृथिवी (लोक) सुख-दुःख सहित सबको संरक्षण देने के लिए स्थित हैं तथा वह भयभीत होकर जिसे पुकारते हैं, जिसका प्रकाशयुक्त पथ विशिष्ट सम्मान बढ़ाने वाला है, उसी का पूजन-वन्दन करें ॥४,२.३॥

यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही यस्याद उर्वन्तरिक्षम् ।
यस्यासौ सूरो विततो महित्वा कस्मै देवाय हविषा विधेम
॥४,२.४॥

(किस देवता का भजन करें ?) जिसकी महत्ता से व्यापक द्युलोक, विशाल पृथिवी, फैला हुआ अन्तरिक्ष तथा सूर्य आदि का विस्तार हुआ है, उसी का हम यजन करें ॥४,२.४॥

यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रे यस्य रसामिदाहुः ।
इमाश्च प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४,२.५॥

(किस देवता को पूजें ?) जिसकी महिमा की घोषणा करने वाले विश्व के हिमाच्छादित क्षेत्र, समुद्र तथा पृथिवी हैं, यह दिशाएँ जिसकी बाहुएँ हैं, उसी की हम पूजा करें ॥४,२.५॥

आपो अग्रे विश्वमावन् गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः ।
यासु देवीष्वधि देव आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४,२.६॥

(किस देवता की अर्चना करें ?) जिस अमृतरूप, ऋत को समझने वाले ने आपः (सृष्टि के मूल-क्रियाशील प्रवाह) के रूप में गर्भ धारण करके विश्व को गतिशील किया, जिसकी

दिव्यशक्ति के अधीन देवता रहते हैं, उसीकी अर्चना हम करें ॥४,२.६॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीमुत द्यां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४,२.७॥

(किस देव की अभ्यर्थना करें ?) पहले (सृष्टि के आदिकाल में) हिरण्यगर्भ (तेज को गर्भ में धारण करने वाला) सम्यक्रूप से विद्यमान था। वहीं सभी उत्पन्न (पदार्थों एवं प्राणियों) का एकमात्र अधिष्ठाता है। वहीं पृथ्वी एवं द्युलोक आदि का आधार है। उसके अतिरिक्त) हम और किस देव की अभ्यर्थना करें ? ॥४,२.७॥

आपो वत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन् ।
तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद्धिरण्ययः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४,२.८॥

(हम किस देवता की उपासना करें ?) प्रारम्भ में वत्स (बालक या सृष्टि) को जन्म देने वाली आपः (सृष्टि के मूल

तत्त्व) की धाराएँ गर्भ को प्रकट करने वाली हैं। उस जन्म लेने वाले (शिशु या विश्व की रक्षक झिल्ली (आवरण) के रूप में जो तेज अवस्थित रहता है, हम उसी दिव्य तेज की उपासना करें ॥४,२.८॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त ३- शत्रुनाशन सूक्त

व्याघ्र, चोरों और भेड़िए से बचाव की कामना

उदितस्त्रयो अक्रमन् व्याघ्रः पुरुषो वृकः ।
हिरुग्घि यन्ति सिन्धवो हिरुग्देवो वनस्पतिर्हिरुङ्नमन्तु शत्रवः ॥४,३.१॥

जैसे अन्तर्हित होकर नदियाँ प्रवाहित होती हैं और अन्तर्हित होकर वनौषधियाँ रोगों को भगा देती हैं, वैसे आदि भी अन्तर्हित होकर भाग जाएँ । व्याघ, चोर और भेड़िया भी अपने स्थान से भागकर चले जाएँ ॥४,३.१॥

परेणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः ।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥४,३.२॥

भेड़ियह दूर के मार्ग से गमन करें और चोर उससे भी दूर के मार्ग से चले जाएँ। दाँतों वाली रस्सी (साँपिन) अन्य मार्ग से गमन करे और पापी शत्रु दूर से भाग जाएँ ॥४,३.२॥

अक्ष्यौ च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि ।
आत्सर्वान् विंशतिं नखान् ॥४,३.३॥

हे व्याघ्र !हम आपके आँख और मुख को विनष्ट करके (पैरों के) बीसों नाखूनों को भी विनष्ट करते हैं ॥४,३.३॥

व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि ।
आदु ष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम् ॥४,३.४॥

दन्त वाले हिंसक प्राणियों में से हम सबसे पहले व्याघ्र को विनष्ट करते हैं। उसके बाद चोर को, फिर लुटेरे को, फिर सर्प और भेड़ियह को विनष्ट करते हैं ॥४,३.४॥

यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति ।
पथामपध्वंसेनैत्विन्द्रो वज्रेण हन्तु तम् ॥४,३.५॥

आज जो चोर आ रहे हैं, वह हमसे पिटकर चूर-चूर होते हुए भाग जाएँ। वह कष्टदायी मार्ग से भागें और इन्द्रदेव उन्हें अपने वज्र से मार डालें ॥४,३.५॥

मूर्णा मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टयः ।
निम्रुक्ते गोधा भवतु नीचायच्छशयुर्मृगः ॥४,३.६॥

हिंसक पशुओं के दाँत कमजोर हो जाएँ सिर के सींग और पसलियों की हड्डियाँ क्षीण हो जाएँ ।हे यात्रिन् !गोह नामक जीव आपकी दृष्टि में न पड़े और लेटने के स्वभाव वाले दुष्ट मृग भी निचले मार्ग से चले जाएँ ॥४,३.६॥

यत्संयमो न वि यमो वि यमो यन् न संयमः ।
इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम् ॥४,३.७॥

व्याघ्रादि (हिंसक प्राणियों अथवा प्रवृत्तियों) को काबू करने के लिए अथर्वा द्वारा प्रयुक्त इन्द्र और सोम से प्रकट (सूत्र) नियम यह है कि जहाँ संयम सफल न हो, वहाँ वि-यम (दमन प्रक्रिया का प्रयोग किया जाए तथाजहाँ वि-यम उपयुक्त न हो, वहाँ संयम का प्रयोग किया जाए ॥४,३.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त ४- वाजीकरण सूक्त

वनस्पति तथा जड़ी बूटियों का वर्णन

यां त्वा गन्धर्वो अखनद्वरुणाय मृतभ्रजे ।
तां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम् ॥४,४.१॥

हे औषधे ! वरुण (वरुणदेव अथवा वरणीय मनुष्यों के लिए आपको गन्धर्व ने खोदा था । हम भी इन्द्रिय-शक्ति बढ़ाने वाली,आपको खोदते हैं ॥४,४.१॥

उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः ।
उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना ॥४,४.२॥

(औषधि को) उषा देवी शक्ति सम्पन्न वीर्य से समृद्ध करें । हमारा यह मन्त्रात्मक वेचन भी इसे बढ़ाए । वर्षणकारी

प्रजापतिदेव भी इसे बल-वीर्य से युक्त करके उन्नत करें ॥४,४.२॥

यथा स्म ते विरोहतोऽभितप्तमिवानति ।
ततस्ते शुष्मवत्तरमियं कृणोत्वोषधिः ॥४,४.३॥

(हे पुरुष !) विशेष सन्दर्भ में कर्मारूढ़ होने पर जब शरीर के अंग तप्त होकर गतिशील होते हैं, तब यह औषधि आपको असीम बल-वीर्य से युक्त करे ॥४,४.३॥

उच्छुष्मौषधीनां सारा ऋषभाणाम् ।
सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यमस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥४,४.४॥

अन्य वीर्यवर्द्धक औषधियों में यह औषधि अत्यधिक श्रेष्ठ सिद्ध हो । काया को वश में करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप पौरुषयुक्त शक्ति इस (औषधि) में स्थापित करें ॥४,४.४॥

अपां रसः प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम् ।
उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम् ॥४,४.५॥

हे औषधे ! जल मंथन के समय आप पहले उत्पन्न हुई अमृतोपम रस हैं और वनस्पतियों में साररूप हैं। आप सोमरस की सहोदरा हैं और अङ्गिरा आदि अषयों के मंत्र-बल से प्रकट वीर्यरूप हैं ॥४,४.५॥

अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति ।
अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥४,४.६॥

हे अग्निदेव ! हे सवितादेव ! हे सरस्वतीदेवि ! हे ब्रह्मणस्पते ! आप इस मनुष्य की इन्द्रियों को बल-वीर्य प्रदान करके उसे धनुष के समान (प्रहारको बनाएँ ॥४,४.६॥

आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥४,४.७॥

(हे मनुष्य !) हम आपकी इन्द्रियों को धनुष पर प्रत्यञ्चा तानने के समान बल-सम्पन्न बनाते हैं। अस्तु, आप बलशाली के समान अपने कर्म पर आरूढ़ हों ॥४,४.७॥

अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च ।

अथ ऋषभस्य यह वाजास्तान् अस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥४,४.८॥

हे औषधे ! घोड़ा, बैल, मेढ़ा (नर-भेड़) आदि में शरीर को वश में करने वाला जो ओजस् हैं, उसे (इस व्यक्ति के शरीर में) स्थापित करें ॥४,४.८॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त ५- स्वापन सूक्त

स्वप्न के देव की प्रशंसा

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत्।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥४,५.१॥

सहस्र शृंगों (रश्मियों) वाला वृषभ (वर्षा करने वाला सूर्य) समुद्र से ऊपर आ गया है । शत्रु का पराभव करने वाले उन (सूर्य) के बल से हम (स्तोतागण सबको सुख से शयन करा देते हैं ॥४,५.१॥

न भूमिं वातो अति वाति नाति पश्यति कश्चन ।
स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरन् ॥४,५.२॥

इस समय धरती पर अत्यधिक वायु न चले और न ही कोई मनुष्य ऊपर से देखे । हे वायुदेव ! आप इन्द्रदेव के मित्र हैं । अतः आप समस्त स्त्रियों और कुत्तों को सुला दें ॥४,५.२॥

प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया नारीर्या वह्यशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धयस्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥४,५.३॥

जो नारियाँ घर के आँगन में सोती हैं ।जो चलते वाहन पर सोने वाली हैं, जो बिछौने पर सोती हैं, जो उत्तम गंध से सुवासित श्रेष्ठ शय्याओं पर सोती हैं। हम उन्हीं की तरह से सभी स्त्रियों को सुखपूर्वक सुला देते हैं ॥४,५.३॥

एजदेजदजग्रभं चक्षुः प्राणमजग्रभम् ।
अङ्गान्यजग्रभं सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे ॥४,५.४॥

समस्त जंगम प्राणियों को हमने सुला दिया है और उनके आँखों की दर्शनशक्ति को हमने ग्रहण कर लिया है तथा प्राण- संचार स्थान में विद्यमान घाणेन्द्रिय को भी ग्रहण कर लिया है । रात्रि के अँधेरे में हमने उनके समस्त अंगों को निद्रा के वशीभूत कर लिया है ॥४,५.४॥

य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति ।
तेषां सं दध्मो अक्षीणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥४,५.५॥

जो यहाँ ठहरता एवं आता-जाता रहता है और हमारी ओर देखता है, उनकी दृष्टि को हम राज- प्रासाद की तरह निश्चल बनाएँ ॥४,५.५॥

स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्पतिः ।
स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः ॥४,५.६॥

(श्वान के प्रति) तुम्हारी माँ शयन करे । तुम्हारे पिता सोएँ । स्वयं (श्वान) तुम भी सो जाओ । गृहस्वामी, सभी बान्धव एवं परिकर के सब लोग सो जाएँ ॥४,५.६॥

स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि स्वापया जनम् ।
ओत्सूर्यमन्यान्त्स्वापयाव्युषं जागृतादहमिन्द्र इवारिष्टो अक्षितः ॥४,५.७॥

हे स्वप्न के अधिष्ठाता देव ! स्वप के साधनों द्वारा आप समस्त लोगों को सुला दें तथा अन्य लोगों को सूर्योदय तक

निद्रित रखें। इस प्रकार सबके सो जाने पर हम इन्द्र के समान अहिंसित तथा क्षयरहित होकर प्रात:काल तक जागते रहें ॥४,५.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त ६- विषघ्न सूक्त

तक्षक की उत्पत्ति तथा विष का वर्णन

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः ।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकाररसं विषम् ॥४,६.१॥

पहले दस शीर्ष तथा दस मुख वाला ब्राह्मण उत्पन्न हुआ, उसने पहले सोमपान किया। उस (सोमपान) से विष को असार-प्रभावहीन बना दिया ॥४,६.१॥

यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावत्सप्त सिन्धवो वितष्ठिरे ।
वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम् ॥४,६.२॥

जितने विस्तार से द्यावा-पृथिवी फैली है और सप्त सिन्धु जितने परिमाण में फैले हैं, उतने स्थान तक के विष को दूर

करने के लिए हम मन्त्रात्मका वाणी का प्रयोग करते हैं ॥४,६.२॥

सुपर्णस्त्वा गरुत्मान् विष प्रथममावयत्।
नामीमदो नारूरुप उतास्मा अभवः पितुः ॥४,६.३॥

हे विष ! वेगवान् गरुड़ पक्षी ने आपको पहले खा लिया था। वह न उन्मत्त हुए और न बेहोश हुए। आप उनके लिए अन्न के समान बन गए ॥४,६.३॥

यस्त आस्यत्पञ्चाङ्गुरिर्वक्राच्चिदधि धन्वनः ।
अपस्कम्भस्य शल्यान् निरवोचमहं विषम् ॥४,६.४॥

पाँच अँगुलियों वाले जिस हाथ ने आपको मुख रूप डोरी चढ़े हुए धनुष से मनुष्य के शरीर में डाल दिया है, उस विष को तथा विष वाले हाथ को हम अभिमंत्रित औषधि द्वारा प्रभावहीन बनाते हैं ॥४,६.४॥

शल्याद्विषं निरवोचं प्राञ्जनादुत पर्णधेः ।
अपाष्ठाच्छृङ्गात्कुल्मलान् निरवोचमहं विषम् ॥४,६.५॥

शल्य क्रिया द्वारा, लेप लगाकर, पत्तों या पंख वाले उपकरण से हमने विष दूर किया। नुकीले उपकरण से-श्रृंग प्रयोग से कुलाल (औषधि विशेष) द्वारा हमने विष को हटाया है ॥४,६.५॥

अरसस्त इषो शल्योऽथो ते अरसं विषम् ।
उतारसस्य वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम् ॥४,६.६॥

हे बाण ! आपका विष-सम्पन्न फलक विषरहित हो जाए और आपका विष भी वीर्यरहित हो जाए। उसके बाद रसहीन वृक्ष से बना आपका धनुष भी वीर्यरहित हो जाए ॥४,६.६॥

यह अपीषन् यह अदिहन् य आस्यन् यह अवासृजन् ।
सर्वे ते वध्रयः कृता वध्रिर्विषगिरिः कृतः ॥४,६.७॥

विषयुक्त औषधि प्रदान करने वाले, लेपन विष को प्रयुक्त करने वाले, दूर से विष को फेंकने वाले तथा समीप में खड़े होकर अन्न, जल आदि में विष मिलाने वाले जो मनुष्य हैं. हमने उन मनुष्यों को मंत्र बल के द्वारा प्रभावहीन कर दिया

। हमने उन पर्वतों को भी प्रभावहीन कर दिया, जिन पर विष उत्पन्न होते हैं ॥४,६.७॥

वध्रयस्ते खनितारो वध्रिस्त्वमस्योषधे ।
वध्रिः स पर्वतो गिरिर्यतो जातमिदं विषम् ॥४,६.८॥

हे विषयुक्त औषधे ! आपको खोदने वाले मनुष्य प्रभावहीन हो जाएँ और आप स्वयं भी प्रभावहीन हो जाएँ. तथा जिन पर्वतों और पहाड़ों पर आप उत्पन्न होती हैं, वह भी प्रभावहीन हो जाएँ ॥४,६.८॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त ७- विषनाशन सूक्त

विषहारी वारण वृक्ष तथा विषमूलक जड़ीबूटी का वर्णन

वारिदं वारयातै वरणावत्यामधि ।
तत्रामृतस्यासिक्तं तेना ते वारयह विषम् ॥४,७.१॥

वरणावती औषधि में स्थित रस हमारे विष को दूर करे । इसमें अमृत का स्रोत है। उस अमृतोपम जल के द्वारा हम आपके विष को दूर करते हैं ॥४,७.१॥

अरसं प्राच्यं विषमरसं यदुदीच्यम् ।
अथेदमधराच्यं करम्भेण वि कल्पते ॥४,७.२॥

पूर्व दिशा, उत्तर दिशा तथा दक्षिण दिशा में होने वाले विष निर्वीर्य हो जाएँ। इस प्रकार समस्त दिशाओं में होने वाले विष मंत्र- बल द्वारा निर्वीर्य हो जाएँ ॥४,७.२॥

करम्भं कृत्वा तिर्यं पीबस्पाकमुदारथिम् ।
क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्त्स न रूरुपः ॥४,७.३॥

हे दोषपूर्ण शरीर वाले ! पीव (मेद,चर्बी) को पकाने वाले (श्रम) तथा भूख के अनुसार खाया गया (औषधि मिलाकर बनाया गया) करंभ (मिश्रण) रोगनाशक है ।यहतुम्हें (विष के प्रभाव से) बेहोश नहीं होने देगा ॥४,७.३॥

वि ते मदं मदावति शरमिव पातयामसि ।
प्र त्वा चरुमिव यहषन्तं वचसा स्थापयामसि ॥४,७.४॥

हे औषधे ! आपके विष को हम धनुष से छूटने वाले बाण के समान शरीर से दूर फेंकते हैं। हे विष ! गुप्तरूप से घूमने वाले दूत के समान शरीर के अङ्गों में संव्याप्त होते हुए आपको हम मंत्र-बल के द्वारा दूर फेंकते हैं ॥४,७.४॥

परि ग्राममिवाचितं वचसा स्थापयामसि ।
तिष्ठा वृक्ष इव स्थाम्न्यभ्रिखाते न रूरुपः ॥४,७.५॥

जनसमूह के समान इकड़े हुए विष को हम मंत्र बल के द्वारा बाहर निकालते हैं। हे कुदाल से खोदी हुई औषधे ! आप अपने स्थान पर ही वृक्ष के समान रहें । इस व्यक्ति को मूर्छित न करें ॥४,७.५॥

पवस्तैस्त्वा पर्यक्रीणन् दूर्शेभिरजिनैरुत ।
प्रक्रीरसि त्वमोषधेऽभ्रिखाते न रूरुपः ॥४,७.६॥

हे विषयुक्त औषधे ! महर्षियों ने आपको पवित्र (शोधित) करने के निमित्त फैलाए हुए दर्भ के तृणों से क्रय कर लिया है । आप दुष्ट हिरणों के चर्म से क्रय की हुई हैं, इसलिए आप इस स्थान से भाग जाएँ। हे कुदाल से खोदी हुई औषधे ! आप इस व्यक्ति को मूर्छित न करें ॥४,७.६॥

अनाप्ता यह वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद्व एतत्पुरो दधे ॥४,७.७॥

हे मनुष्यों ! आपके प्रतिकूल चलने वाले जिन शत्रुओं ने योग आदि प्रमुख कर्मों को किया है, उन कर्मों के द्वारा वह हमारे वीर पुत्रों को इस देश में न मारें । इस चिकित्सारूप

कर्म को हम आपकी सुरक्षा के लिए आपके सामने प्रस्तुत करते हैं ॥४,७.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त ८- राज्याभिषेक सूक्त

जल का वर्णन

भूतो भूतेषु पय आ दधाति स भूतानामधिपतिर्बभूव ।
तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा अनु मन्यतामिदम् ॥४,८.१॥

स्वयं उत्पन्न होकर, जो उत्पन्न हुए(जड़-चेतन) को पयः(पोषक रस) प्रदान करता है, वह सर्वभूतों का अधिपति हुआ। उसके राजसूय (राज्य को प्रेरणा देने वाले प्रयोग के अनुरूप मृत्यु भी चलती है। वह राजा राज्य को मान्यता देकर आचरण करता है ॥४,८.१॥

अभि प्रेहि माप वेन उग्रश्चेत्ता सपत्नहा ।
आ तिष्ठ मित्रवर्धन तुभ्यं देवा अधि ब्रुवन् ॥४,८.२॥

हे उग्र, चेतना संचारक 'वेन' (तेजस्वी) ! आप शत्रु विनाशक होकर आगे बढ़े, पीछे न हटें । देवों ने आपको मित्रों का संवर्द्धन करने वाला कहा है, आप भली प्रकार स्थापित (प्रतिष्ठित) हों ॥४,८.२॥

आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषं छ्रियं वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥४,८.३॥

स्थापित होने पर, विश्व से विभूषित होकर, श्री (वैभव) रूप वस्त्रों से आच्छादित होकर तथा स्वप्रकाशित होकर वह विचरण करते हैं। उस विश्वरूप, प्राणयुक्त, वर्षणशील का बड़ा नाम है । वह अमृत तत्त्वों पर स्थित (आधारित) रहता है ॥४,८.३॥

व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे वि क्रमस्व दिशो महीः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥४,८.४॥

हे व्याघ्र ! आप बाघ (विशिष्ट घाण शक्ति सम्पन्न) के समान दुर्धर्ष होते हुए विशाल दिशाओं को विजित करें । समस्त

प्रजाएँ आपको अपना स्वामी स्वीकार करें और बरसने वाले दिव्य जल भी आपकी कामना करें ॥४,८.४॥

या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत वा पृथिव्याम् ।
तासां त्वा सर्वासामपामभि षिञ्चामि वर्चसा ॥४,८.५॥

अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी पर जो दिव्यजल अपने साररूप रस से प्राणियों को तृप्त करते हैं, उन समस्त जल के तेजस् से हम आपका अभिषेक करते हैं ॥४,८.५॥

अभि त्वा वर्चसासिचन्न् आपो दिव्याः पयस्वतीः ।
यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वा सविता करत्॥४,८.६॥

हे तेजस्विन् ! दिव्य रसयुक्त जल अपने तेजस् से आपको अभिषिक्त करे। आप जिस प्रकार मित्रों को समृद्ध करते हैं, उसी प्रकार सवितादेव आपको भी समृद्ध करें ॥४,८.६॥

एना व्याघ्रं परिषस्वजानाः सिंहं हिन्वन्ति महते सौभगाय ।

समुद्रं न सुभुवस्तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्वन्तः ॥४,८.७॥

समुद्र में द्वीप की तरह अप् (सृष्टि के मूलतत्त्व) में व्याघ्र एवं सिंह जैसे पराक्रमी को यह दिव्य धाराएँ महान् सौभाग्य के लिए प्रेरित और विभूषित करती हैं ॥४,८.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त ९- आञ्जन सूक्त

अंजन मणि की महिमा का वर्णन

एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम् ।
विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् ॥४,९.१॥

है अञ्जन मणे ! आप प्राणधारियों की सुरक्षा करने वाले पर्वत की नेत्ररूप हैं। आप देवताओं द्वारा प्रदत्त जीवन-रक्षक परिधि रूप में यहाँ पधारें ॥४,९.१॥

परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि ।
अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ॥४,९.२॥

हे अञ्जन मणे ! आप मनुष्यों तथा गौओं की सुरक्षा करने वाले हैं। आप घोड़ों तथा घोड़ियों की सुरक्षा के लिए भी स्थित रहते हैं ॥४,९.२॥

उतासि परिपाणं यातुजम्भनमाञ्जन ।
उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो असि जीवभोजनमथो हरितभेषजम्
॥४,९.३॥

जिससे आँखों को निर्मल किया जाता हैं, ऐसे हे अजुन मणे ! आप राक्षसों द्वारा दी हुई यातनाओं को नष्ट करने वाले हैं और जीवों की सुरक्षा करने वाले हैं। आप स्वर्ग में स्थित अमृत को जानने वाले और प्राणियों केअनिष्ट को दूर करके उनकी सुरक्षा करने वाले हैं। आप पाण्डु- रोग की औषधि हैं ॥४,९.३॥

यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधस उग्रो मध्यमशीरिव ॥४,९.४॥

हे अञ्जन मणे ! आप जिस मनुष्य के अंगों और जोड़ों में संव्याप्त हो जाते हैं, उस मनुष्य के शरीर से क्षय आदि रोगों को मेघ उड़ाने वाली वायु के समान शीघ्र ही दूर कर देते हैं ॥४,९.४॥

नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम् ।
नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ॥४,९.५॥

हे अञ्जन मणे ! जो मनुष्य आपको धारण करते हैं, उनको दूसरों के द्वारा प्रेरित शाष नहीं प्राप्त होते और दूसरों के द्वारा प्रेरित अभिचार रूप कृत्या तथा कृत्या से होने वाले शोक नहीं प्राप्त होते । उनको गति-अवरोधक बाधाएँ भी नहीं प्राप्त होतीं ॥४,९.५॥

असन्मन्त्राद्दुष्वप्न्याद्दुष्कृताच्छमलादुत ।
दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात्तस्मान् नः पाह्याञ्जन ॥४,९.६॥

हे अञ्जन मणे ! अभिचारात्मक बुरे मंत्रों से उनके द्वारा प्राप्त होने वाले कष्टों से, बुरे स्वप्नों से, पापों से उत्पन्न होने

वाले दुःखों से, बुरे मन तथा दूसरों की क्रूर आँखों से आप हमारी सुरक्षा करें ॥४,९.६॥

इदं विद्वान् आञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ।
सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ॥४,९.७॥

हे अञ्जन मणे ! हम आपकी महिमा को जानते हैं, इसलिए हमने यह बात सत्य ही कही है, झूठ नहीं । अतः हम आपके द्वारा गौओं, घोड़ों और जीवों की सेवा करें ॥४,९.७॥

त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः ।
वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन् नाम ते पिता ॥४,९.८॥

कठिनाई से जीवन निर्वाह कराने वाले ज्वर, शरीर बल को कमजोर बनाने वाले सन्निपात तथा सर्प के विष-विकार आदि तीन रोग दास के समान 'आञ्जन-द्रव्य' के वशीभूत रहते हैं। हे अञ्जन मणे ! पर्वतों में श्रेष्ठ 'त्रिककुद' नामक पर्वत आपका पिता है ॥४,९.८॥

यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि ।
यातूंश्च सर्वाञ्जम्भयत्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥४,९.९॥

हिम से घिरे हुए 'त्रिककुद' नामक पहाड़ पर उत्पन्न होने वाले अञ्जन समस्त यातुधानों तथा यातुधानियों को विनष्ट करते रहते हैं। इसलिए वह हमारे रोगों को भी नष्ट करें ॥४,९.९॥

यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे ।
उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्यञ्जन ॥४,९.१०॥

हे अञ्जन मणे ! यदि आप 'विककुद' हैं अथवा 'यामुन' कहलाते हैं, तो आपके यह दोनों नाम भी कल्याण करने वाले हैं। अत: आप अपने इन दोनों नामों से हमारी सुरक्षा करें ॥४,९.१०॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त १० – शङ्खमणि सूक्त

शंख मणि का वर्णन

वाताज्जातो अन्तरिक्षाद्विद्युतो ज्योतिषस्परि ।
स नो हिरण्यजाः शङ्खः कृशनः पात्वंहसः ॥४,१०.१॥

वायु, अन्तरिक्ष, विद्युत् और सूर्य आदि ज्योतियों से उत्पन्न तथा स्वर्ण से विनिर्मित तेजस्वी शंख, पाप से हमारी सुरक्षा करे ॥४,१०.१॥

यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे ।
शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्त्रिणो वि षहामहे ॥४,१०.२॥

हे शंख ! आप प्रकाशमान नक्षत्रों के सामने विद्यमान समुद्र में पैदा होते हैं, ऐसे ज्योतिर्मय आप से असुरों को विनष्ट करके हम पिशाचों को पराभूत करते हैं ॥४,१०.२॥

शङ्खेनामीवाममतिं शङ्खेनोत सदान्वाः ।
शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः ॥४,१०.३॥

शंख के द्वारा हम समस्त रोगों तथा विवेकहीनता को दूर करते हैं। इसके द्वारा हम सदैव पीड़ा देने वाली अलक्ष्मी को भी तिरस्कृत करते हैं विघ्नों को दूर करने वाला यह तेजस्वी शंख, पापों से हमारी सुरक्षा करे ॥४,१०.३॥

दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः ।
स नो हिरण्यजाः शङ्ख आयुष्प्रतरणो मणिः ॥४,१०.४॥

पहले द्युलोक में उत्पन्न हुआ, समुद्र में उत्पन्न हुआ, नदियों से एकत्रित किया हुआ हिरण्य (दिव्य तेज) से निर्मित यह शंख मणि, हमारे आयुष्य की वृद्धि करने वाली हो ॥४,१०.४॥

समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः ।

सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ॥४,१०.५॥

समुद्र से पैदा हुआ यह (शंख) मणि तथा मेघों से उत्पन्न सूर्य सदृश यह देवताओं एवं असुरों के अस्त्रों से हमारी रक्षा करे ॥४,१०.५॥

हिरण्यानामेकोऽसि सोमात्त्वमधि जज्ञिषे ।
रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्र ण आयूंषि तारिषत्॥४,१०.६॥

(हे शंख मणे !) आप तेजस्वियों में से एक हैं। आप सोम से उत्पन्न हुए हैं। रथों में आप देखने योग्य होते हैं और बाणों के आश्रय स्थान तूणीर में चमकते हुए प्रतीत होते हैं, ऐसे आप हमारे आयुष्य की वृद्धि करें ॥४,१०.६॥

देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्स्वन्तः ।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभि रक्षतु ॥४,१०.७॥

देवों की अस्थिरूप यह मोती बना हैं । यह आत्मतत्त्व की तरह जल के बीच विचरण करता है । (हे व्यक्ति विशेष !) ऐसे उस (शंखमणि) को तेजस्विता, बल तथा सौ वर्ष वाले आयुष्य के लिए (तुम्हें) बाँधता हूँ । यह सभी प्रकार तुम्हारी रक्षा करें ॥४,१०.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त ११- अनड्वान् सूक्त

इंद्र के रूप में अनड्वान अर्थात बैल का वर्णन

अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्वन्तरिक्षम् ।
अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनड्वान् विश्वं भुवनमा विवेश ॥४,११.१॥

विश्वरूपी शकट को ढोने वाले वृषभरूप ईश्वर ने पृथ्वी को धारण किया है। उसने स्वर्गलोक, अन्तरिक्षलोक तथा पूर्व आदि छ: महादिशाओं और उर्वियों को भी धारण किया है । इस प्रकार वह अनड्वान् (शकटवाही) ईश्वर समस्त लोकों में प्रविष्ट हुआ है ॥४,११.१॥

अनड्वान् इन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे त्रयां छक्रो वि मिमीते अध्वनः ।

भूतं भविष्यद्भुवना दुहानः सर्वा देवानां चरति व्रतानि ॥४,११.२॥

इस अनड्वान् को इन्द्र कहते हैं। वह शक्र (इन्द्रदेव) तीनों लोकों) को नापते हैं तथा प्राणियों का निरीक्षण करते हैं, यह भविष्यत् और वर्तमानकाल में पदार्थों को उत्पन्न करते हुए देवताओं के सभी व्रतों को चलाते हैं ॥४,११.२॥

इन्द्रो जातो मनुष्येष्वन्तर्घर्मस्तप्तश्चरति शोशुचानः ।
सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्षद्यो नाश्नीयादनडुहो विजानन् ॥४,११.३॥

इन्द्रदेव ही (जीवात्मारूप में) मनुष्यों के अन्दर प्रकट होते हैं । वह तपस्वी सूर्य की तरह प्रकाशित होते हुए विचरण करते हैं । वह भोजन नहीं करते और संचालक को जानते हुए (उसी के अनुशासन में) श्रेष्ठ प्रज्ञायुक्त होकर रहते हैं तथा देहपात के बाद भी भटकते नहीं ॥४,११.३॥

अनड्वान् दुहे सुकृतस्य लोक ऐनं प्याययति पवमानः पुरस्तात्।
पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥४,११.४॥

सत्कर्म के पश्चात् प्राप्त होने वाले पुण्यलोक में यह ईश्वररूप अनड्वान्, इच्छित फल प्रदान करता है । पहले से पवित्र सोमरस इसको रस से परिपूर्ण करता हैं । पर्जन्य इसकी धाराएँ हैं, मरुद्गण इसके स्तन हैं और यज्ञ ही इसका पय (दुग्धं या जल) है। यज्ञ में प्रदान की जाने वाली दक्षिणा इस अनड्वान् की दोहन क्रिया है ॥४,११.४॥

यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञो नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता ।
यो विश्वजिद्विश्वभृद्विश्वकर्मा घर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात्॥४,११.५॥

याजकगण इस देवस्वरूप अनड्वान् के स्वामी नहीं हैं । यज्ञक्रिया, दाता तथा प्रतिग्रहीता भी इसके स्वामी नहीं हैं। यह समस्त जगत् को विजित करने वाला तथा वायुरूप में

सबका पालन-पोषण करने वाला है । जगत् के समस्त कर्म इसके ही हैं । यह चार चरण वाला हमें आलोकवान् सूर्य के विषय में उपदेश देता है ॥४,११.५॥

यहन देवाः स्वरारुरुहुर्हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं घर्मस्य व्रतेन तपसा यशस्यवः ॥४,११.६॥

जिस देवस्वरूप अनड्वान् के द्वारा देवगण शरीर का त्याग करके अमृत के केन्द्ररूप प्रकाश स्थान पर आरूढ़ हुए थे, उसी के द्वारा हम प्रदीप्त आदित्यदेव का व्रत करते हुए मोक्ष सुख की कामना करके पुण्य के फलरूप श्रेष्ठ लोक को प्राप्त करते हैं ॥४,११.६॥

इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट्।
विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानदुह्यक्रमत ।
सोऽदंहयत सोऽधारयत ॥४,११.७॥

इन्द्रदेव ही अपने स्वरूप से अग्नि हैं । वही सृष्टिकर्ता तथा प्रजापति समस्त विश्व को वहन करने के कारण 'विराट् हुए। वही समस्त मनुष्यों, अग्नियों तथा रथ खींचने वालों में संव्याप्त हैं । वही सबको बल प्रदान करते हैं तथा सबको धारण करते हैं ॥४,११.७॥

मध्यमेतदनड्डुहो यत्रैष वह आहितः ।
एतावदस्य प्राचीनं यावान् प्रत्यङ्समाहितः ॥४,११.८॥

यह (यज्ञ) उस विश्व संवाहक का मध्य (भार उठाने वाला) भाग है । इस अनड्वान् वृषभ का अगला भाग उतने ही परिमाण वाला है, जितने परिमाण वाला पिछला भाग है ॥४,११.८॥

यो वेदानदुहो दोहान् सप्तानुपदस्वतः ।
प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः ॥४,११.९॥

जो प्रजापति रूप अनड्वान् के लोक, समुद्र आदि सात प्रकार के दोहन स्रोतों को जानते हैं, वह श्रेष्ठ प्रजाओं तथा पुण्य लोकों को प्राप्त करते हैं। ऐसा (जो कहा गया, उसे सप्तऋषि ही जानते हैं ॥४,११.९॥

पद्भिः सेदिमवक्रामन्न् इरां जङ्घाभिरुत्खिदन् ।
स्रमेणानड्वान् कीलालं कीनाशश्चाभि गछतः ॥४,११.१०॥

यह प्रजापति सम्बन्धी अनड्वान् अपने चारों पैरों से दु:ख लाने वाली अलक्ष्मी को अधोमुख करके उस पर आरूढ़ होता हुआ धरती को अपनी जंघाओं (पैरों) से कुरेटता हुआ तथा अपने श्रम के द्वारा अपने अनुकूल चलने वाले किसान को अन्न प्रदान करता है ॥४,११.१०॥

द्वादश वा एता रात्रीर्व्रत्या आहुः प्रजापतेः ।
तत्रोप ब्रह्म यो वेद तद्वा अनडुहो व्रतम् ॥४,११.११॥

यह बारह रात्रियाँ यज्ञात्मक प्रजापति के व्रत के योग्य हैं, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं । उतने समय में पधारे हुए वृषभरूप प्रजापति सम्बन्धी ब्रह्म को जो जानते हैं, वहीं इस अनडुहवत के अधिकारी हैं। यह ज्ञान अनडुह (विश्व संचालक) का अनुष्ठान है ॥४,११.११॥

दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मध्यंदिनं परि ।
दोहा यह अस्य संयन्ति तान् विद्मानुपदस्वतः ॥४,११.१२॥

पूर्वोक्त लक्षण वाले वृषभ का, हम प्रात:काल, सायंकाल तथा मध्याह्नकाल में दोहन करते हैं । यज्ञानुष्ठान करने वाले के फलों का भी हम दोहन करते हैं। इस प्रकार जो इस अनड्वान् के दोहन फल से संयुक्त होते हैं ऐसे अविनाशी दोहन कर्म को हम जानते हैं ॥४,११.१२॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त १२ – रोहिणी वनस्पति सूक्त

रोहिणी वनस्पति का वर्णन

रोहण्यसि रोहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी ।
रोहयहदमरुन्धति ॥४,१२.१॥

हे लाल वर्ण वाली रोहिणि ! आप टूटी अस्थियों को पूर्णता प्रदान करने वाली हैं । हे अरुन्धति ! (उपचार के मार्ग में बाधा न आने देने वाली) आप इस (घाव आदि) को भर दें ॥४,१२.१॥

यत्ते रिष्टं यत्ते द्युत्तमस्ति पेष्टृं त आत्मनि ।
धाता तद्भद्रया पुनः सं दधत्परुषा परुः ॥४,१२.२॥

(हे घायल व्यक्ति !) आपके जो अंग चोट खायह हुए या जले हुए हैं, प्रहार से जो अंग टूट या पिस गए हैं; उन समस्त अंगों को देवगण इस भद्रा (हितकारी औषधि या शक्ति) के माध्यम से जोड़ दें- ठीक कर दें ॥४,१२.२॥

सं ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते परुषा परुः ।
सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु ॥४,१२.३॥

(हे घायल मनुष्य !) आपके शरीर में स्थित छिन्न मज्जा पुनः बढ़कर सुखकारी हो जाए, पोरु से पोरु जुड़ जाएँ। मांस का छिन्न-भिन्न हुआ भाग तथा हड्डी भी जुड़कर ठीक हो जाए ॥४,१२.३॥

मज्जा मज्ञा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु ।
असृक्ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ॥४,१२.४॥

छिन्न-भिन्न मज्जा-मज्जा से, मांस-मांस से तथा चर्म-चर्म से मिल जाए । रुधिर एवं हड्डियाँ भी बढ़ जाएँ ॥४,१२.४॥

लोम लोम्ना सं कल्पया त्वचा सं कल्पया त्वचम् ।
असृक्ते अस्थि रोहतु छिन्नं सं धेह्योषधे ॥४,१२.५॥

हे औषधे ! (शस्त्र प्रहार से अलग हुए) आप रोम को रोम से, त्वचा को त्वचा से मिलाकर ठीक कर दें तथा आपके द्वारा हड्डियों का रक्त दौड़ने लगे। टूटे हुए अन्य अंगों को भी आप जोड़ दें ॥४,१२.५॥

स उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव रथः सुचक्रः ।
सुपविः सुनाभिः प्रति तिष्ठोर्ध्वः ॥४,१२.६॥

(हे छिन्न-भिन्न अंग वाले मनुष्य !) आप (मन्त्र और औषधि के बल से) स्वस्थ होकर अपने शयन स्थान से उठ करके वेगपूर्वक गमन करें । जिस प्रकार श्रेष्ठ चक्रों वाले, सुदृढ़ नेमि वाले तथा सुदृढ़ नाभि वाले रथ दौड़ते हुए प्रतिष्ठित होते हैं, उसी प्रकार आप भी सुदृढ़ अंग वाले होकर दौड़ते हुए प्रतिष्ठित हों ॥४,१२.६॥

यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघान ।
ऋभू रथस्येवाङ्गानि सं दधत्परुषा परुः ॥४,१२.७॥

घाव, धारवाले शस्त्र के प्रहार से हुआ हो या पत्थर की चोट से हुआ हो, जिस प्रकार ऋभुदेव (या कुशल शिल्पी) रथों के अंग-अवयव जोड़ देते हैं, वैसे ही पोरु से पोरु जुड़ जाएँ ॥४,१२.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त १३ – रोग निवारण सूक्त

वायु और इंद्र की स्तुति

उत देवा अवहितं देवा उन् नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥४,१३.१॥

हे देवगण ! हम पतितों को बार-बार ऊपर उठाएँ । हे देवो ! हम अपराधियों के अपराध- कर्मों का निवारण करें । हे देवो ! हमारा संरक्षण करते हुए आप हमें दीर्घायु बनाएँ ॥४,१३.१॥

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आवातु व्यन्यो वातु यद्रपः ॥४,१३.२॥

यह दो वायु, एक समुद्र पर्यन्त और दूसरे समुद्र से सुदूर प्रवाहित होते हैं। उन दोनों में से एक तो आपको (स्तोता को) बल प्रदान करें और दूसरे आपके पापों को विनष्ट करें ॥४,१३.२॥

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः ।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे ॥४,१३.३॥

हे वायुदेव ! आप व्याधियों का निवारण करने वाली कल्याणकारी औषधि को लेकर आएँ । जो अहितकर पाप (मल) हैं, उन्हें यहाँ से बहाकर ले जाएँ। आप संसार के लिए औषधिरूप, कल्याणकारी, देवदूत बनकर सर्वत्र संचार करते हैं ॥४,१३.३॥

त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः ।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत्॥४,१३.४॥

इस लोक में समस्त देवगण हमें संरक्षण प्रदान करें । मरुद्गण और समस्त प्राणी हमारी रक्षा करें । वह हमारे शरीर के रोगों और पापों का निवारण करें ॥४,१३.४॥

आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥४,१३.५॥

हे स्तोताओं ! आपके लिए सुख-शान्ति प्रदायक और अहिंसक संरक्षण साधनों के साथ हमारा आगमन हुआ है। आपके लिए मंगलमय शक्तियों को भी हमने धारण किया है। अस्तु, इस समय तुम्हारे सम्पूर्ण रोगोंका निवारण करता हूँ ॥४,१३.५॥

अयं मे हस्तो भगवान् अयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥४,१३.६॥

यह हमारा हाथ सौभाग्ययुक्त है, अति सौभाग्यशाली यह हाथ सबके लिए सभी रोगों का निवारण-कर्ता है । यह हाथ शुभ और कल्याणकारी है ॥४,१३.६॥

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ॥४,१३.७॥

मन्त्रोच्चारण करते समय जैसे वाणी के साथ जिह्वा गति करती हैं। वैसे ही दस अँगुलियों वाले दोनों हाथों से आपका स्पर्श करते हुए आपको रोगों से मुक्त करते हैं ॥४,१३.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त १४ – स्वज्र्योति प्राप्ति सूक्त

यज्ञ की महिमा

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सो अपश्यज्जनितारमग्रे ।
तेन देवा देवतामग्रा आयन् तेन रोहान् रुरुहुर्मेध्यासः ॥४,१४.१॥

अग्नि ही 'अज' है । यह दिव्य तेज से उत्पन्न है । इस अज (जन्मरहित यज्ञाग्नि अथवा काया में जीव रूप स्थित प्राणाग्नि) ने पहले अपने उत्पन्नकर्ता को देखा (उसकी ओर सहज उन्मुख हुआ) । इस अज की सहायता से देवों ने देवत्व प्राप्त किया, दूसरे मेधावी (अधिगण) उच्च लोकों तक पहुँचे ॥४,१४.१॥

क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यान् हस्तेषु बिभ्रतः ।

दिवस्पृष्ठं स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥४,१४.२॥

हे मनुष्यो ! आप लोग अन्न को हाथ में लेकर अग्नि की सहायता से (यज्ञ करते हुए) स्वर्गलोक को प्राप्त करें, उसके बाद द्युलोक के पृष्ठ भाग उन्नत स्वर्ग में जाकर आत्मिक ज्योति को प्राप्त करते हुए देवताओं के साथ मिलकर बैठे ॥४,१४.२॥

पृष्ठात्पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥४,१४.३॥

हम भूलोक के पृष्ठ भाग से अन्तरिक्षलोक में चढ़ते हैं और अन्तरिक्षलोक से द्युलोक में चढ़ते हैं। हमने सुखमय द्युलोक से ऊपर, स्वज्योति (आत्म-ज्योति) को प्राप्त किया ॥४,१४.३॥

स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं यह विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे ॥४,१४.४॥

जो श्रेष्ठ ज्ञानी जन विश्व को धारण करने वाले यज्ञ का विस्तार करते हैं। वह आत्मज्योति-सम्पन्न द्युलोक की अभिलाषा नहीं करते। वह पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक से ऊपर उठ जाते हैं ॥४,१४.४॥

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषानाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥४,१४.५॥

हे अग्निदेव ! आप देवों में प्रमुख हैं, इसलिए आप बुलाने योग्य स्थान में पधारें । आप देवताओं एवं मनुष्यों के लिए नेत्र रूप हैं । आपकी संगति चाहने वाले याजकगण भृगुओं (तपस्वियों) के साथ प्रीतिरत होकर स्वः (आत्म-तत्त्व या स्वर्ग) तथा स्वस्ति (कल्याण) को प्राप्त करें ॥४,१४.५॥

अजमनज्मि पयसा घृतेन दिव्यं सुपर्नं पयसं बृहन्तम् ।

तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥४,१४.६॥

इस दिव्य गतिशील, वर्द्धमान, सुवर्ण (तेजस्व) 'अज' को हम पय (दुग्ध या रस) तथा घृत (धी या सार अंश) से यजन करते हैं। उस (अज) के माध्यम से आत्म-चेतना को पुण्य लोकों की ओर उन्मुख करके उत्तम स्वर्ग की प्राप्ति करेंगे ॥४,१४.६॥

पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गुलिभिर्दर्व्योद्धर पञ्चधैतमोदनम् ।
प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् ॥४,१४.७॥

पाँच प्रकार से बँटने वाले अन्न को पाँचों अँगुलियों के द्वारा पाँच भागों में विभक्त करें। इस अज' के सिर को पूर्व दिशा में रखें तथा इसके दाहिने भाग को दक्षिण दिशा में रखें ॥४,१४.७॥

तीच्यां दिशि भसदमस्य धेह्युत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम्। ऊर्ध्वायां दिश्यजस्यानूकं धेहि दिशि ध्रुवायां धेहि पाजस्यमन्तरिक्षे मध्यतो मध्यमस्य ॥४,१४.८॥

इस 'अज' के कटिभाग को पश्चिम दिशा में स्थापित करें, उत्तर पार्थ भाग को उत्तर दिशा में स्थापित करें । पीठ को ऊर्ध्व दिशा में स्थापित करें और पेट को ध्रुव (नीचे) दिशा में स्थापित करें तथा इसके मध्य भाग को मध्य अन्तरिक्ष में स्थापित करें ॥४,१४.८॥

शृतमजं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा सर्वैरङ्गैः संभृतं विश्वरूपम् । स उत्तिस्ठेतो अभि नाकमुत्तमं पन्द्विश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु ॥४,१४.९॥

अपने समस्त अंगों से सम्यक्रूप से विश्वरूप बने, परिपूर्ण 'अज' को ईश्वर के आच्छादन से ढकें । हे अज ! आप इस लोक से स्वर्गलोक की तरह चारों पैरों से चढ़ते हुए चारों दिशाओं में संव्याप्त हों ॥४,१४.९॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त १५ – वृष्टि सूक्त

वर्षा देव की स्तुति

समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥४,१५.१॥

वायु से युक्त दिशाएँ बादलों के साथ उदित हों और वृष्टि के निमित्त जल वहन करने वाले बादल, वायु द्वारा प्रेरित होकर एकत्र हों । महा वृषभ के समान गर्जना करने वाले बादल जल के द्वारा पृथ्वी को तृप्त करें ॥४,१५.१॥

समीक्षयन्तु तविषाः सुदानवोऽपां रसा ओषधीभिः सचन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग्जायन्तामोषधयो विश्वरूपाः ॥४,१५.२॥

श्रेष्ठ दानी मरुद्गण हमारे लिए जलवृष्टि कराएं। जल के रस औषधियों से संयुक्त हों । वृष्टि की जल धाराएँ पृथ्वी को समृद्ध करें और उनके द्वारा विविधरूप वाली औषधियाँ उत्पन्न हों ॥४,१५.२॥

समीक्षयस्व गायतो नभांस्यपां वेगासः पृथगुद्विजन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग्जायन्तां वीरुधो विश्वरूपाः
॥४,१५.३॥

हे मरुद्गण ! हम आपकी प्रार्थना करते हैं, इसलिए आप हमें जलयुक्त मेघों का दर्शन कराएँ । जल के प्रवाह अलग-अलग होकर गमन करें और वृष्टि की धाराएँ पृथ्वी को समृद्ध करें । विविधरूप वाली औषधियाँ पृथ्वी पर उत्पन्न हों ॥४,१५.३॥

गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः पर्जन्य घोषिणः पृथक्।
सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥४,१५.४॥

हे पर्जन्यदेव ! गर्जना करने वाले मरुद्गण आपका अलग-अलग गुणगान करें । बरसते हुए मेघ की धाराओं से आप पृथ्वी को गीला करें ॥४,१५.४॥

उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत्पातयाथ ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु
॥४,१५.५॥

हे मरुदेवो ! सूर्य की गर्मी के द्वारा आप बादलों को समुद्र से ऊपर की ओर ले जाएँ, उड़ाएँ और महा वृषभ (ऋषभ) के समान गर्जना करने वाले जल-प्रवाह से आप भूमि को तृप्त करें ॥४,१५.५॥

अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्धि ।
त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षमाशारैषी कृशगुरेत्वस्तम्
॥४,१५.६॥

हे पर्जन्यदेव ! गड़गड़ाहट की गर्जना से युक्त होकर औषधिरूप वनस्पतियों में गर्भ स्थापित करें । उदक-धारक रथ से गमन करें । उदक पूर्ण (जल पूर्ण मेघों के मुख को नीचे करें और इसे खाली करें, ताकि उच्च और निम्न प्रदेश समतल हो सकें ॥४,१५.६॥

सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥४,१५.७॥

हे मनुष्यो ! श्रेष्ठ दानी मरुद्गण आपको तृप्त करें । अजगर की तरह मोटे जल-प्रवाह प्रकट हों और वायु के द्वारा प्रेरित बादल पृथ्वी पर वर्षा करें ॥४,१५.७॥

आशामाशां वि द्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु ॥४,१५.८॥

दिशाओं-दिशाओं में विद्युत् चमके और सभी दिशाओं में वायु प्रवाहित हो। इसके बाद वायु द्वारा प्रेरित बादल धरती की ओर अनुकूलता से आगमन करें ॥४,१५.८॥

आपो विद्युदभ्रं वर्षं सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ॥४,१५.९॥

हे श्रेष्ठ दानी मरुतो ! जल, विद्युत्, मेघ, वृष्टि तथा अजगर के समान आकार वाले आपके जल-प्रवाह संसार को तृप्त करें और आपके द्वारा प्रेरित बादल धरती की रक्षा करें ॥४,१५.९॥

अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव ।
स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि ॥४,१५.१०॥

मेघों के शरीररूप जल से एकरूप हुए विद्युताग्नि, उत्पन्न होने वाली वनौषधियों के पालक हैं । वह जातवेदा अग्निदेव हमें प्राणियों में जीवन- संचार करने वाली तथा स्वर्ग के अमृत को उपलब्ध कराने वाली वृष्टि प्रदान करें॥४,१५.१०॥

प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाप ईरयन्न् उदधिमर्दयाति ।
प्र प्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतोऽर्वान् एतेन स्तनयित्नुनेहि ॥४,१५.११॥

प्रजापालक सूर्यदेव जलमयह समुद्र से जल को प्रेरित करते हुए समुद्र को गति प्रदान करें । उनके द्वारा अवं के समान गतिवाले तथा वृष्टि करने वाले बादलों से जल की वृद्धि हो । हे पर्जन्यदेव ! इन गर्जनकारी मेघों के साथ आप हमारे सम्मुख पधारें ॥४,१५.११॥

अपो निषिञ्चन्न् असुरः पिता नः श्वसन्तु गर्गरा अपां वरुणाव नीचीरपः सृज ।
वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु ॥४,१५.१२॥

प्राणों को वृष्टि का जल प्रदान करने वाले हमारे पालक सूर्यदेव, वृष्टि के जल को तिरछे भाव से बरसाएँ । उस समय जल के गड़-गड़ शब्द करने वाले प्रवाह चलें । हे वरुणदेव ! आप भी पृथ्वी पर आगमन करने वाले जल को बादलों से पृथक् करें । उसके बाद सफेद भुजा वाले मेढक पृथ्वी पर आकर शब्द करें ॥४,१५.१२॥

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्दूका अवादिषुः ॥४,१५.१३॥

वर्ष भर गुप्त स्थिति में बने रहने वाले, व्रतपालक ब्राह्मणों (तपस्वियों) की भाँति रहने वाले मण्डूकगण, पर्जन्य को प्रसन्न (जीवन्ती करने वाली वाणी बोलने लगे हैं ॥४,१५.१३॥

उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि ।
मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः ॥४,१५.१४॥

हे मण्डूकि ! आप हर्षित होकर वेगपूर्वक ध्वनि करें । हे तादुरि ! आप वर्षा के जल को बुलाएँ और तालाब में अपने चारों पैरों को फैलाकर तैरें ॥४,१५.१४॥

खण्वखा३ खैमखा३ मध्ये तदुरि ।
वर्षं वनुध्वं पितरो मरुतां मन इच्छत ॥४,१५.१५॥

हे खण्वखे (बिलवासी) ! हे पैमखे (शान्त रहने वाली) ! हे तदुरि (छोटी मेढकी) ! तुम वर्षा के बीच आनन्दित होओ? हे पितरो ! आप मरुद्गणों के मन को अनुकूल इच्छा युक्त बनाओ ॥४,१५.१५॥

महान्तं कोशमुदचाभि षिञ्च सविद्युतं भवतु वातु वातः ।
तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु ॥४,१५.१६॥

हे पर्जन्यदेव ! आप अपने जलरूपी महान् कोश को विमुक्त करें और उसे नीचे बहाएँ, जिससे यह जल से

परिपूर्ण नदियाँ अबाधित होकर पूर्व की ओर प्रवाहित हों । आप जल-राशि से द्यावा-पृथिवी को परिपूर्ण करें, ताकि हमारी गौओं को उत्तम पेय जल प्राप्त हो ॥४,१५.१६॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त १६- सत्यानृतसमीक्षक सूक्त

वरुण देव की प्रशंसा

बृहन्न् एषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति ।
य स्तायन् मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः ॥४,१६.१॥

महान् अधिष्ठाता (वरुणदेव सभी वस्तुओं के जानने वाले हैं। वह समस्त कर्मों को निकटता से देखते हैं। तथा सबके वृत्तान्तों को जानते हैं ॥४,१६.१॥

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।
द्वौ संनिषद्य यन् मन्त्रयहते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः ॥४,१६.२॥

जो स्थित रहता है, जो चलता है, जो गुप्त (बल भरा) अथवा खुला व्यवहार करता है तथा जब दो मनुष्य एक साथ बैठकर गुप्त विचार विमर्श करते हैं, तब उनमें तीसरे (उनसे भिन्न होकर राजा वरुणदेव उन सबकोज्ञानते हैं ॥४,१६.२॥

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता ।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्न् अल्प उदके निलीनः
॥४,१६.३॥

यह पृथ्वी और दूर अन्तर पर मिलने वाला विशाल द्युलोक राजा वरुण के वश में है। पूर्व-पश्चिम के दोनों समुद्र भी वरुणदेव की दोनों कोखें हैं। इस प्रकार वह (जगत् को व्याप्त करते हुए) थोड़े जल में भी विद्यमान हैं ॥४,१६.३॥

उत यो द्यामतिसर्पात्परस्तान् न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः ।
दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम्
॥४,१६.४॥

जो (अनुशासनहीन) द्युलोक से परे चले जाते हैं, वह भी राजा वरुण के पाशों से मुक्त नहीं हो सकते; क्योंकि उनके दिव्य दूत पृथ्वी पर विचरण करते हैं और अपनी हजारों आँखों से भूमि का निरीक्षण करते रहते हैं ॥४,१६.४॥

सर्वं तद्राजा वरुणो वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात्। संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षान् इव श्वघ्नी नि मिनोति तानि ॥४,१६.५॥

द्यावा-पृथिवी के बीच में निवास करने वाले तथा अपने सामने निवास करने वाले प्राणियों को राजा वरुणदेव विशेष रूप से देखते हैं। वह मनुष्यों की पलकों के झपकों को उसी प्रकार गिनते तथा नापते हैं, जिस प्रकार जुआरीअपने पासों को नापता रहता है ॥४,१६.५॥

यह ते पाशा वरुण सप्तसप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुषन्तः । छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु ॥४,१६.६॥

हे वरुणदेव ! पापी मनुष्यों को बाँधने के लिए आपके जो उत्तम, मध्यम और अधम सात-सात पाश हैं, वह असत्य बोलने वाले शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करें और सत्यभाषी पुण्यात्माओं को मुक्त करें ॥४,१६.६॥

शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैनं मा ते मोच्यनृतवाङ्नृचक्षः ।
आस्तां जाल्म उदरं श्रंशयित्वा कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः ॥४,१६.७॥

हे वरुणदेव ! आप अपने सैकड़ों पाशों द्वारा इस (शत्रु) को बाँधे । हे मनुष्यों को देखने वाले वरुणदेव ! मिथ्याभाषी मनुष्य आपसे बचने न पाएँ । दुष्ट मनुष्य अपने उदर को पतित (नष्ट) करके, बिना बँधे (व्यक्त) कोशकी तरह उपेक्षित पड़ा रहे ॥४,१६.७॥

यः समाभ्यो वरुणो यो व्याभ्यो यः संदेश्यो वरुणो यो विदेश्यो ।
यो दैवो वरुणो यश्च मानुषः ॥४,१६.८॥

जो सम है जो विषम है, जो देश (क्षेत्र में रहने वाला अथवा विदेश (विशिष्ट क्षेत्र) में रहने वाला है, जो देवों से सम्बन्धित है या मनुष्यों से सम्बन्धित है, वह सब वरुण का (पाश या प्रभाव) ही है ॥४,१६.८॥

तैस्त्वा सर्वैरभि ष्यामि पाशैरसावामुष्यायणामुष्याः पुत्र ।
तान् उ ते सर्वान् अनुसंदिशामि ॥४,१६.९॥

हे अमुक माता-पिता के पुत्रो ! हम आपको पूर्व ऋचा में वर्णित वरुणदेव के समस्त पाशों (प्रभावों) से बाँधते हैं। आपके लिए उन सबको प्रेरित करते हैं ॥४,१६.९॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त १७- अपामार्ग सूक्त

सहदेवी व अपामार्ग वनस्पति का वर्णन

ईशाणां त्वा भेषजानामुज्जेष आ रभामहे ।
चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वस्मा औषधे त्वा ॥४,१७.१॥

हे औषधे ! रोग निवारण के लिए औषधिरूप में प्रयुक्त होने वाली अन्य औषधियों की आप स्वामिनी हैं। हम आपका आश्रय ग्रहण करते हैं । हे औषधे ! समस्त रोगों के निवारण के लिए हम आपको सहस्र – वीर्यों से सम्पन्न करते हैं ॥४,१७.१॥

सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनःसराम् ।
सर्वाः समह्व्योषधीरितो नः पारयादिति ॥४,१७.२॥

दोषों को दूर करने वाली 'सत्यजित', क्रोध को विनष्ट करने वाली 'शपथ यावनी', अभिचारों को सहने वाली 'सहमाना' तथा बार-बार रोगों को नष्ट करने वाली (अथवा विरेचक) 'पुन:सरा' आदि औषधियों को हम प्राप्त करते हैं। वह इन रोगों से हमें तार दें ॥४,१७.२॥

या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥४,१७.३॥

जो पिशाचिनियाँ क्रोधित होकर शाप देती हैं और मूर्छित करने वाला पाप कर्म करती हैं तथा जो शरीर के रक्त को हरने के लिए नवजात शिशु को भी पकड़ लेती हैं, वह सब पिशाचिनियाँ अभिचार करने वाले शत्रु के ही पुत्र को खाएँ ॥४,१७.३॥

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि ॥४,१७.४॥

हे कृत्ये ! अभिचारकों ने जिस आभिचारिक प्रयोग को आपके लिए कच्चे मिट्टी के बर्तन में किया है, धुएँ से नीली और ज्वाला से लाल अग्नि स्थान में किया है तथा कच्चे मांस में किया है, उससे आप उन अभिचारकों का ही नाश करें ॥४,१७.४॥

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन् नाशयामसि ॥४,१७.५॥

अरिष्ट दर्शनरूपी बुरे स्वप्न को, दुःखदायी जीवन बिताने की स्थिति को, राक्षस जाति को, अभिचार क्रिया से उत्पन्न भारी भय को, निर्धनता बढ़ाने वाली अलक्ष्मियों को तथा बुरे नाम वाली समस्त पिशाचियों को हम इस पुरुष से दूर करते हैं ॥४,१७.५॥

क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥४,१७.६॥

हे अपामार्ग औषधे ! अत्यधिक भूख से मरना, अत्यधिक प्यास से मरना अथवा भूख-प्यास से मरना, वाणी अथवा इन्द्रियों के दोष तथा सन्तानहीनता आदि दोषों को हम आपके द्वारा दूर करते हैं ॥४,१७.६॥

तृष्णामारं क्षुधामारमथो अक्षपराजयम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥४,१७.७॥

प्यास से मरना, भूख से मरना तथा इन्द्रिय का नष्ट होना आदि समस्त दोषों को हे अपामार्ग औषधे ! आपकी सहायता से हम दूर करते हैं ॥४,१७.७॥

अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद्वशी ।
तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर ॥४,१७.८॥

हे अपामार्ग औषधे ! आप समस्त औषधियों को वशीभूत करने वाली अकेली औषधि हैं । हे रोगिन् ! आपके रोगों को हम अपामार्ग औषधि से दूर करते हैं ॥४,१७.८॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त १८- अपामार्ग सूक्त

सहदेवी व अपामार्ग जड़ी का वर्णन

समं ज्योतिः सूर्येणाह्ना रात्री समावती ।
कृणोमि सत्यमूतयहऽरसाः सन्तु कृत्वरीः ॥४,१८.१॥

जिस प्रकार प्रभा और सूर्य का तथा दिन और रात्रि का समानत्व सत्य है, उसी प्रकार हम भी सत्य की रक्षा के लिए यल करते हैं। जिससे हिंसा करने वाली कृत्याएँ निष्क्रिय हो जाएँ ॥४,१८.१॥

यो देवाः कृत्यां कृत्वा हरादविदुषो गृहम् ।
वत्सो धारुरिव मातरं तं प्रत्यगुप पद्यताम् ॥४,१८.२॥

हे देवो ! जो (दुष्ट व्यक्ति) अनजान व्यक्ति के घर कृत्या को प्रेरित करे, वह कृत्या वापस लौटकर उस अभिचारी पुरुष से इस प्रकार लिपटे, जिस प्रकार दूध पीने वाला बच्चा अपनी माता से लिपटता है ॥४,१८.२॥

अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति ।
अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुलाः फट्करिक्रति ॥४,१८.३॥

जो पापात्मा, गुप्त स्थान में कृत्या प्रयोग करके उससे दूसरों की हिंसा करते हैं, उस दग्ध क्रिया (अग्नि संयोग) वाली विधि में बहुत से पत्थर 'फट' शब्द पुनः-पुनः करते हैं ॥४,१८.३॥

सहस्रधामन् विशिखान् विग्रीवां छायया त्वम् ।
प्रति स्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर ॥४,१८.४॥

हे हजारों स्थानों में उत्पन्न होने वाली सहदेवी औषधे ! आप हमारे शत्रुओं को कटे हुए बालों वाले तथा कटे हुए ग्रीवा

वाले करके, विनष्ट कर डालें । उनकी प्रिय कृत्या शक्ति को उन्हीं के पास पहुँचा दें ॥४,१८.४॥

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥४,१८.५॥

जिस कृत्या को बीज बोने योग्य स्थान में गाड़ा गया है, जिस कृत्या को गौओं के बीच में गाड़ा गया हैं, जिसको वायु-प्रवाह के स्थान में रखा गया है तथा जिसको मनुष्यों के गमन स्थान में गाड़ा गया है, उन सब कृत्याओं को हम सहदेवी औषधि से दूषित (प्रभावहीन) करते हैं ॥४,१८.५॥

यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनं तु सः ॥४,१८.६॥

जो (शत्रुगण कृत्या प्रयोग करते हैं, किन्तु कर नहीं पाते, पैर की अंगुली आदि ही तोड़ने का प्रयास करते हैं. उनके लिए

वह (कृत्या) पीड़ा उत्पन्न करे तथा हमारा भला करे ॥४,१८.६॥

अपामार्गोऽप मार्ष्टु क्षेत्रियं शपथश्च यः ।
अपाह यातुधानीरप सर्वा अराय्यः ॥४,१८.७॥

अपामार्ग नामक औषधि हमारे आनुवंशिक रोगों तथा शत्रुओं के आक्रोशों को हमसे दूर करे । वह पिशाचियों तथा समस्त अलक्ष्मियों को भी बन्धनग्रस्त करके हमसे दूर करे ॥४,१८.७॥

अपमृज्य यातुधानान् अप सर्वा अराय्यः ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥४,१८.८॥

हे अपामार्ग औषधे ! आप यातना देने वाले समस्त यक्ष-राक्षसों तथा निर्धन बनाने वाले समस्त पाप-देवताओं को हमसे दूर करें । आपके साधनों के द्वारा हम अपने समस्त दु:खों को दूर करते हैं ॥४,१८.८॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त १९- अपामार्ग सूक्त

सहदेवी व अपामार्ग ओषधि का वर्णन

उतो अस्यबन्धुकृदुतो असि नु जामिकृत्।
उतो कृत्याकृतः प्रजां नदमिवा छिन्धि वार्षिकम् ॥४,१९.१॥

हे अपामार्ग औषधे ! आप शत्रुओं का विनाश करने वाली हैं। आप कृत्या का प्रयोग करने वाले शत्रुओं की सन्तानों को वर्षा में पैदा होने वाली 'नड़ (नरकुल) नामक' घास के समान काटकर विनष्ट कर डालें ॥४,१९.१॥

ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन ।
सेनेवैषि त्विषीमती न तत्र भयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योषधे ॥४,१९.२॥

हे सहदेवि ! 'नृषद' के पुत्र कण्व नामक ब्राह्मण ने आपका वर्णन किया है। आप याजक की सुरक्षा के लिए तेजस्वी सेना के समान जाती हैं, अत: आप जहाँ गमन करती हैं, वहाँ अभिचारजन्य भय नहीं होता ॥४,१९.२॥

अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन् ।
उत त्रातासि पाकस्याथो हन्तासि रक्षसः ॥४,१९.३॥

प्रकाश के द्वारा संसार को आलोकित करते हुए सूर्यदेव जिस प्रकार ज्योतियों में सर्वश्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार हे सहदेवि ! आप भी समस्त औषधियों में श्रेष्ठ । हे अपामार्ग औषधे ! आप अपने बल के द्वारा कृत्या के दोषों को नष्ट करती हुई दुर्बलों की सुरक्षा करती हैं और राक्षसों का विनाश करती हैं ॥४,१९.३॥

यददो देवा असुरांस्त्वयाग्रे निरकुर्वत ।
ततस्त्वमध्योषधेऽपामार्गो अजायथाः ॥४,१९.४॥

हे औषधे !पूर्वकाल में इन्द्रादि देवों ने आपके द्वारा 'राक्षसों को तिरस्कृत किया था । आप अन्य औषधियों के ऊपर विद्यमान रहकर अपामार्ग रूप से पैदा होती हैं ॥४,१९.४॥

विभिन्दती शतशाखा विभिन्दन् नाम ते पिता ।
प्रत्यग्वि भिन्धि त्वं तं यो अस्मामभिदासति ॥४,१९.५॥

हे अपामार्ग औषधे ! आप सैकड़ों शाखाओं वाली होकर 'विभिन्दती' नाम प्राप्त करती हैं। आपके पिता का नाम 'विभिन्दन्' है । अत: जो हमारे विनाश की कामना करते हैं, उन शत्रुओं के सामने जाकर आप उनका विनाश करे ॥४,१९.५॥

असद्भूम्याः समभवत्तद्यामेति महद्यचः ।
तद्वै ततो विधूपायत्प्रत्यक्कर्तारमृछतु ॥४,१९.६॥

हे औषधे ! आप असत् भूमि से उत्पन्न हैं, फिर भी आपकी महत्ता द्युलोक तक संव्याप्त होती है। आप (कृत्या

अभिचार) करने वाले के पास ही उसे निश्चित रूप से पहुँचा दें ॥४,१९.६॥

प्रत्यङ्हि संबभूविथ प्रतीचीनफलस्त्वम् ।
सर्वान् मच्छपथामधि वरीयो यावया वधम् ॥४,१९.७॥

हे अपामार्ग औषधे ! आप प्रत्यक्ष फल वाली उत्पन्न हुई हैं। आप शत्रुओं के आक्रोशों तथा उनके विस्तृत मारक-अस्त्रों को हमसे दूर करके उनके पास लौटा दें ॥४,१९.७॥

शतेन मा परि पाहि सहस्रेणाभि रक्षा मा ।
इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओज्मानमा दधत्॥४,१९.८॥

हे सहदेवी औषधे ! रक्षा के सैकड़ों उपायों द्वारा आप हमारी सुरक्षा करें और हजारों उपायों द्वारा कृत्या के दोष से हमें बचाएँ । हे लतापति औषधे ! प्रचण्ड बलशाली इन्द्रदेव हममें ओजस्विता स्थापित करें ॥४,१९.८॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त २० – पिशाचक्षयण सूक्त

सदा पुष्पा नाम की जड़ीबूटी का वर्णन

आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति ।
दिवमन्तरिक्षमाद्भूमिं सर्वं तद्देवि पश्यति ॥४,२०.१॥

वह देवी (मातृनामा-दिव्यदृष्टि) देखती हैं, दूर तक देखती है, विशेष कोण से देखती है, समग्र रूप से देखती है । द्युलोक, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी सभी को वह देवी देखती है ॥४,२०.१॥

तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः षट्चेमाः प्रदिशाः पृथक्।
त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे ॥४,२०.२॥

हे देवि ! आपके प्रभाव से हम तीनों द्युलोक, तीनों पृथ्वीलोक, इन छहों दिशाओं तथा (उसमें निवास करने वाले) समस्त प्राणियों को प्रत्यक्ष देखते हैं ॥४,२०.२॥

दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका ।
सा भूमिमा रुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव ॥४,२०.३॥

हे देवि ! स्वर्ग में स्थित उस सुपर्ण (गरुड़ या सूर्य) के नेत्रों की आप कनीनिका हैं । जिस प्रकार थकी हुई स्त्री पालकी पर आरूढ़ होती है, उसी प्रकार पृथ्वी पर आपका आरोहण (अवतरण हुआ है ॥४,२०.३॥

तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत्।
तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ॥४,२०.४॥

हजारों नेत्रों वाले (इन्द्रदेव या सूर्य) ने इसे हमारे दाहिने हाथ में रखा है । हे औषधे ! उसके माध्यम से हम शूद्रों और आर्यों सभी को देखते हैं ॥४,२०.४॥

आविष्कृणुष्व रूपानि मात्मानमप गूहथाः ।
अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ॥४,२०.५॥

हे देवि ! आप राक्षसों आदि को दूर करने वाले अपने स्वरूप को प्रकट करें, अपने को छिपाएँ नहीं । हे हजारों आँखों से देखने वाली देवि ! गुप्तरूप से विचरण करने वाले पिशाचों से हमारी सुरक्षा करने के लिएआप उन्हें देखें ॥४,२०.५॥

दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः ।
पिशाचान्त्सर्वान् दर्शयहति त्वा रभ औषधे ॥४,२०.६॥

हे देवि ! आप असुरों को हमें दिखाएँ, जिससे वह गुप्तरूप में रहकर हमें कष्ट न दे सकें । आप यातुधानियों तथा समस्त प्रकार की पिशाचियों को भी हमें दिखाएं, इसीलिए हम आपको धारण करते हैं ॥४,२०.६॥

कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः ।
वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ॥४,२०.७॥

हे औषधे ! आप कश्यप (ऋषि अथवा सर्वद्रष्टा) की आँख हैं और चार आँखों वाली देवशुनि की भी आँख हैं । ग्रह-नक्षत्रों आदि से सम्पन्न आकाश में सूर्य के सदृश विचरण करने वाले पिशाचों को आप न छिपने दें ॥४,२०.७॥

उदग्रभं परिपाणाद्यातुधानं किमीदिनम् ।
तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ॥४,२०.८॥

रक्षण-साधनों के द्वारा हमने राक्षसों को वशीभूत कर लिया है। उसके द्वारा हम शूद्रों अथवा आर्यों से युक्त समस्त ग्रहों को देखते हैं ॥४,२०.८॥

यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्च अतिसर्पति ।
भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्र दर्शय ॥४,२०.९॥

जो अन्तरिक्ष से नीचे आता है तथा घुलोक को भी लाँघ जाता है, उस पिशाच को भी हमारी दृष्टि में ले आएँ । ॥४,२०.९॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त २१ – गोसमूह सूक्त

गायों की महिमा का वर्णन

आ गावो अग्मन्न् उत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥४,२१.१॥

गौएँ हमारे घर आकर हमारा कल्याण करें । वह (गौएँ गोशाला में रहकर हमें आनन्दित करें । इन गौओं में अनेक रंग-रूप वाली गौएँ बछड़ों से युक्त होकर, उषाकाल में इन्द्रदेव के निमित्त दुग्ध प्रदान करें ॥४,२१.१॥

इन्द्रो यज्वने गृणते च शिक्षत उपेद्ददाति न स्वं मुषायति ।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्न् अभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥४,२१.२॥

हे इन्द्रदेव ! आप याजक एवं स्तोताओं के सिए अभिलषित अन्न-धन प्रदान करते हैं। उनके धन का कभी हरण नहीं करते, वरन् उसे निरन्तर बढ़ाते हैं। देवत्व को प्राप्त करने की इच्छा वालों को अखण्डित एवं सुरक्षित निवास देते हैं ॥४,२१.२॥

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥४,२१.३॥

वह गौएँ नष्ट नहीं होतीं, तस्कर उन्हें हानि नहीं पहुँचा पाते । शत्रु के अस्त्र उन गौओं को क्षति नहीं पहुँचा पाते । गौओं के पालक जिन गौओं से देवों का यजन करते हैं, उन्हीं गौओं के साथ चिरकाल तक सुखी रहें, ॥४,२१.३॥

न ता अर्वा रेणुककाटोऽश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥४,२१.४॥

रेणुका (धूल) उड़ाने वाले द्रुतगामी अश्व भी उन गौओं को नहीं पा सकेंगे। इन गौओं पर, वध करने के लिए आघात न करें । याजक की यह गौएँ विस्तृत क्षेत्र में निर्भय होकर विचरण करें ॥४,२१.४॥

गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद्गाव सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥४,२१.५॥

गौएँ हमें धन देने वाली हों । हे इन्द्रदेव ! आप हमें गौएँ प्रदान करें । गो-दुग्ध प्रथम सोमरस में मिलाया जाता है । हे मनुष्यो ! यह गौएँ ही इन्द्ररूप हैं। उन्हीं इन्द्रदेव को हम श्रद्धा के साथपाना चाहते हैं ॥४,२१.५॥

यूयं गावो मेदयथ कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु
॥४,२१.६॥

हे गौओ !आप हमें बलवान् बनाएँ । आप हमारे रुग्ण एवं कृश शरीरों को सुन्दर-स्वस्थ बनाएँ। आप अपनी कल्याणकारी ध्वनि से हमारे घरों को पवित्र करें । यज्ञ मण्डप में आपके द्वारा प्राप्त अन्न का ही यशोगान होता है ॥४,२१.६॥

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु
॥४,२१.७॥

हे गौओ ! आप बछड़ों से युक्त हों । उत्तम घास एवं सुखकारक स्वच्छ जल का पान करें। आपका पालक चोरी करने वाला न हो । हिंसक पशु आपको कष्ट न दें । परमेश्वर का कालरूप अस्त्र आपके पास ही न आए ॥४,२१.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त २२ – अमित्रक्षयण सूक्त

इंद्र व क्षत्रिय राजा की स्तुति

इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं मे इमं विशामेकवृषं कृणु त्वम् ।
निरमित्रान् अक्षणुह्यस्य सर्वांस्तान् रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु
॥४,२२.१॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे इस क्षत्रिय (शीर्यवान् रक्षक) को पुत्र-पौत्रों तथा सम्पत्ति आदि से समृद्ध करें और पराक्रमी मनुष्यों में इसे अद्वितीय बनाएँ। इसके ममस्न ग्पुिओं को प्रभावहीन बनाकर आप इसके अधीन करें । 'मैं श्रेष्ठ हूँ ' इसके प्रति ऐसा कहने वालों को (इसके) वश में करें ॥४,२२.१॥

एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष्टं भज यो अमित्रो अस्य ।

वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र शत्रुं रन्धय सर्वमस्मै ॥४,२२.२॥

हे इन्द्रदेव ! आप इस क्षत्रिय को जनसमूह, गौओं नथा अश्वों की सुविधाएँ पाने वाला बनाएँ और इसके शत्रुओं को गौओं, अश्वों तथा मनुष्यों से पृथक रखें। यह क्षत्रिय गुणों की मूर्ति हो। इसके समस्त शत्रुओं तथा राष्ट्रों को आप इसके अधीन करें ॥४,२२.२॥

अयमस्तु धनपतिर्धनानामयं विशां विश्पतिरस्तु राजा ।
अस्मिन्न् इन्द्र महि वर्चांसि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य ॥४,२२.३॥

यह राजा सोने, चाँदी आदि धन तथा प्रजाओं का स्वामी हो । हे इन्द्रदेव ! आप इस राजा में शत्रुओं को पराजित करने वाला तेजस् स्थापित करें ॥४,२२.३॥

अस्मै द्यावापृथिवी भूरि वामं दुहाथां घर्मदुघे इव धेनू ।

अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात्प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम् ॥४,२२.४॥

हे द्यावा-पृथिवि ! धारोष्ण दूध देने वाली गौओं की तरह आप इसे प्रचुर धन प्रदान करें। यह इन्द्र का स्नेह पात्र हो । (इन्द्र का प्रिय पात्र होने से वर्षा होने पर) यह गौओं, औषधियों तथा पशुओं का भी प्रिय हो जाए ॥४,२२.४॥

युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्रं यहन जयन्ति न पराजयन्ते ।
यस्त्वा करदेकवृषं जनानामुत राज्ञामुत्तमं मानवानाम् ॥४,२२.५॥

हे नर श्रेष्ठ ! श्रेष्ठ गुणों वाले इन्द्रदेव को हम आपका मित्र बनाते हैं। उनके द्वारा प्रेरित आपके सहयोगी, शत्रु सेना को विजित करें, वह कभी पराजित न हों । जो इन्द्रदेव वीरों तथा राजाओं में आपको वृषभ के समान प्रमुख बनाते हैं, ऐसे इन्द्रदेव से हम आपकी मैत्री कराते हैं ॥४,२२.५॥

उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्ना यह के च राजन् प्रतिशत्रवस्ते ।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवां छत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥४,२२.६॥

(हे वीर !) आप सर्वश्रेष्ठ हों और आपके शत्रु निम्नकोटि के हों । जो शत्रु आपसे प्रतिकूल व्यवहार करते हैं, वह भी नीचे गिरें । इन्द्रदेव की मित्रता से आप अद्वितीय बलवान् बनकर शत्रुवत् आचरण करने वाले मनुष्यों के भोग-साधन, ऐश्वर्य आदि छीन लाएँ ॥४,२२.६॥

सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून् ।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवां छत्रूयतामा खिदा भोजनानि ॥४,२२.७॥

(हे राजन् !) सिंह के समान पराक्रमी बनकर, आप अपनी प्रजाओं से भोग-साधन आदि प्राप्त करें और देव व्याघ्र के समान बलशाली बनकर अपने शत्रुओं को संतप्त करें । आप इन्द्रदेव की मित्रता से अद्वितीय बलवान् बनकर,

शत्रुवत् व्यवहार करने वालों के धन को विनष्ट करने में सक्षम हों ॥४,२२.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त २३ – पापमोचन सूक्त

अग्नि देव की स्तुति

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते ।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४,२३.१॥

बहुधा जिन्हें ईंधन द्वारा प्रदीप्त किया जाता है, प्रखर चेतना सम्पन्न, प्रथम (श्रेष्ठतम स्तर वाले, पाँचों द्वारा उपासनीय अग्निदेव को हम नमन करते हैं । समस्त विश्व (के घटकों) में जो प्रविष्ट हैं, उनसे हम याचना करते हैं। कि वह हमें पापों से मुक्त कराएँ ॥४,२३.१॥

यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानन् ।
एवा देवेभ्यः सुमतिं न आ वह स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४,२३.२॥

हे जातवेदा अग्ने ! जिस प्रकार आप पूजनीय देवों के पास हवि पहुँचाते हैं तथा यज्ञ के भेदों को जानते हुएँ उनको रचते हैं, उसी प्रकार देवों के पास से हमें श्रेष्ठ बुद्धि प्राप्त कराएँ और समस्त पापों से मुक्त कराएँ ॥४,२३.२॥

यामन्यामन्न् उपयुक्तं वहिष्ठं कर्मङ्कर्मन्न् आभगमग्निमीडे ।
रक्षोहणं यज्ञवृधं घृताहुतं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४,२३.३॥

प्रत्येक यज्ञ के आधाररूप, हवि पहुँचाने वाले और प्रत्येक कर्म में सेवन करने योग्य अग्निदेव की हम प्रार्थना करते हैं। वह अग्निदेव राक्षसों के संहारक तथा यज्ञों को बढ़ाने वाले हैं। घृताहुतियों से जिनको प्रदीप्त करते हैं, ऐसे अग्निदेव हमें पाप से मुक्त कराएँ ॥४,२३.३॥

सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विभुम् ।
हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४,२३.४॥

श्रेष्ठ जन्मवाले, उत्पन्न पदार्थों को जानने वाले तथा समस्त उत्पन्न प्राणी जिनको जानते हैं, ऐसे मनुष्य हितैषी, हव्यवाहक-वैश्वानर अग्निदेव का हम आवाहन करते हैं, वह अग्निदेव हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२३.४॥

यहन ऋषयो बलमद्योतयन् युजा यहनासुराणामयुवन्त मायाः ।
यहनाग्निना पणीन् इन्द्रो जिगाय स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४,२३.५॥

जिन ऋषियों ने अग्निदेव के साथ मैत्री स्थापित करके आत्मशक्ति को जाग्रत् किया है तथा जिन अग्निदेव की सहायता से देवताओं ने राक्षसों की कपटयुक्तियों को दूर किया है और जिनके द्वारा इन्द्रदेव ने 'पणि' नामक असुरों को विजित किया है, वह अग्निदेव हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२३.५॥

यहन देवा अमृतमन्वविन्दन् यहनौषधीर्मधुमतीरकृण्वन् ।
यहन देवाः स्वराभरन्त्स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४,२३.६॥

जिन अग्निदेव की सहायता से देवताओं ने अमरत्व को प्राप्त किया, जिनकी सहायता से देवताओं ने औषधियों को मधुर रस से सम्पन्न किया और जिनकी कृपा से देवत्व के अभिलाषी यजमान स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, वह अग्निदेव हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२३.६॥

यस्येदं प्रदिशि यद्विरोचते यज्जातं जनितव्यं च केवलम् ।
स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४,२३.७॥

जिन अग्निदेव के शासन में समस्त संसार विद्यमान है, जिनके तेज से ग्रह-नक्षत्र आदि आलोकित होते हैं। तथा पृथ्वी पर उत्पन्न समस्त प्राणी जिनके अधीन हैं, उन अग्निदेव की हम प्रार्थना करते हुए बारम्बार उनका आवाहन करते हैं ॥४,२३.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त २४- पापमोचन सूक्त

इंद्र देव की स्तुति

इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे वृत्रघ्न स्तोमा उप मेम आगुः ।
यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४,२४.१॥

परम ऐश्वर्य-सम्पन्न इन्द्रदेव के माहात्म्य को हम जानते हैं । वृत्रहन्ता इन्द्रदेव के महत्त्व को हम सदा से जानते हैं। उनके समक्ष बोले जाने वाले स्तोत्र हमारे पास आ गए हैं। जो दानी इन्द्रदेव सत्कर्म करने वाले यजमान की पुकार को सुनकर समीप आते हैं, वह हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२४.१॥

य उग्रीणामुग्रबाहुर्ययुर्यो दानवानां बलमारुरोज ।

यहन जिताः सिन्धवो यहन गावः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४,२४.२॥

जो उग्रबाहु वाले इन्द्रदेव प्रचण्ड शत्रु सेनाओं में फूट डालने वाले हैं, जिन्होंने दानवों की शक्ति को विनष्ट किया है, जिन्होंने मेघों को फाड़कर उन्हें विजित किया है, जिन्होंने वृत्र को नष्ट करके नदियों और समुद्रों को जीता. हैं, जिन्होंने असुरों को विनष्ट करके उनकी गौओं को जीत लिया है; वह इन्द्रदेव हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२४.२॥

यश्चर्षणिप्रो वृषभः स्वर्विद्यस्मै ग्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम् ।
यस्याध्वरः सप्तहोता मदिष्ठः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४,२४.३॥

जो इन्द्रदेव मनुष्यों को इच्छित फल देकर उनकी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं, जो वृषभ के समान स्वर्ग प्राप्त कराने में सक्षम हैं, जिनके लिए अभिषवकारी पत्थर कूटने की ध्वनि द्वारा सोमरसरूपी धन (इन्द्र-इन्द्र) कहते हैं, जिनका

सोमयाग सात होताओं द्वारा सम्पन्न होकर आनन्ददायी होता है; वह इन्द्र हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२४.३॥

यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे ।
यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४,२४.४॥

जिन इन्द्रदेव के नियन्त्रण में सेचन (तेज स्थापन) में समर्थ ऋषभादि (बैल या वर्षणशील श्रेष्ठ देव) रहते हैं, जिनके लिए आत्म तत्त्व के ज्ञाता यज्ञादि की स्थापना करते हैं, जिनके लिए ब्रह्म (या वेदवाणी) द्वारा;धित सोम प्रवाहित होता है, वह हमें पापों से बचाएँ ॥४,२४.४॥

यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते यं हवन्त इषुमन्तं गविष्टौ ।
यस्मिन्न् अर्कः शिश्रियह यस्मिन्न् ओजः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४,२४.५॥

जिन इन्द्रदेव की प्रीति को सोम-याजक चाहते हैं, जिन शस्त्रधारी इन्द्रदेव को गौओं (इन्द्रियों या किरणों) की रक्षार्थ बुलाया जाता है, जिनमें मंत्र आश्रय पाते हैं तथा जिनमें अद्वितीय ओज रहता है; वह इन्द्रदेव हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२४.५॥

यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम् ।
यहनोद्यतो वज्रोऽभ्यायताहिं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४,२४.६॥

जो इन्द्रदेव प्रथम कर्म करने के लिए प्रकट हुए, जिनका वृत्रहनन आदि अद्वितीय पराक्रम सर्वत्र जाना जाता है। इनके द्वारा उठाए गए वज्र ने वृत्रासुर को सब ओर से विनष्ट कर डाला, वह इन्द्र हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२४.६॥

यः संग्रामान् नयति सं युधे वशी यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि।
स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४,२४.७॥

जो इन्द्रदेव स्वतन्त्र प्रहार करने वाले युद्ध में, योद्धाओं को युद्ध करने के लिए पहुँचाते हैं, जो दोनों पुष्ट जोड़ों को परस्पर संसृष्ट करते हैं, उन इन्द्रदेव की हम स्तोतागण स्तुति करते हुए उन्हें बारम्बार पुकारते हैं। वह हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२४.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त २५ – पापमोचन सूक्त

वायु और सविता देव की स्तुति

वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद्विशथो यौ च रक्षथः ।
यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२५.१॥

वायु और सूर्य के श्रुतिविहित कर्मों को हम जानते हैं। हे वायुदेव ! हे सवितादेव ! आप आत्मा वाले स्थावर तथा जंगम प्राणियों में विद्यमान रहकर संसार की सुरक्षा करते हैं तथा उसे धारण करते हैं । अत: आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२५.१॥

ययोः संख्याता वरिमा पार्हिवानि याभ्यां रजो युपितमन्तरिक्षे ।

ययोः प्रायं नान्वानशे कश्चन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२५.२॥

जिन दोनों (वायु तथा सविता) के पार्थिव कर्म मनुष्यों में विख्यात हैं। जिनके द्वारा अन्तरिक्ष में मेघ-मण्डल धारण किया जाता है तथा जिनकी गति को कोई भी देवता नहीं प्राप्त कर सकता, वह हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२५.२॥

तव व्रते नि विशन्ते जनासस्त्वय्युदिते प्रेरते चित्रभानो ।
युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२५.३॥

हे चित्रभानु (विचित्र प्रकाश वाले- सूर्यदेव) ! आपकी सेवा करने के लिए मनुष्य नियमपूर्वक व्यवहार करते हैं और आपके उदित होने पर समस्त लोग अपने कर्म में प्रवृत्त हो जाते हैं । हे वायुदेव तथा सवितादेव ! आप दोनों समस्त प्राणियों की सुरक्षा करते हैं। अत: समस्त पापों से हमें मुक्त कराएँ ॥४,२५.३॥

अपेतो वायो सविता च दुष्कृतमप रक्षांसि शिमिदां च सेधतम् ।
सं ह्यूर्जया सृजथः सं बलेन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२५.४॥

हे वायु एवं सूर्यदेव ! आप हमारे दुष्कृत्यों को हमसे पृथक् करें और उपद्रव करने वाले राक्षसों तथा प्रदीप्त (प्रखर) कृत्या को हमसे दूर करें । आप अन्न-रस से उत्पन्न बल से हमें युक्त करें तथा समस्त पापों से छुड़ाएँ ॥४,२५.४॥

रयिं मे पोषं सवितोत वायुस्तनू दक्षमा सुवतां सुशेवम् ।
अयक्ष्मतातिं मह इह धत्तं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२५.५॥

वायुदेव तथा सूर्यदेव हमें ऐश्वर्य प्रदान करें और हमारे देह में सुख-सामर्थ्य का संचार करें । हे वायुदेव तथा सवितादेव ! आप हममें आरोग्यता धारण करें तथा समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२५.५॥

प्र सुमतिं सवितर्वाय ऊतयह महस्वन्तं मत्सरं मादयाथः ।
अर्वाग्वामस्य प्रवतो नि यछतं तौ नो मुञ्चतमंहसः
॥४,२५.६॥

हे सूर्यदेव ! हे वायुदेव ! आप सुरक्षा के निमित्त हमें श्रेष्ठ बुद्धि प्रदान करें और हर्षकारी सोमरस पीकर आनन्दित हों । आप हमें सेवन करने योग्य प्रचुर धन प्रदान करें तथा समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२५.६॥

उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धामन्न् अस्थिरन् ।
स्तौमि देवं सवितारं च वायुं तौ नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४,२५.७॥

वायुदेव और सूर्यदेव के सम्मुख हमारी श्रेष्ठ आकांक्षाएँ उपस्थित हैं । हम उन दोनों देवों की प्रार्थना करते हैं, वह समस्त पापों से हमें मुक्त करें ॥४,२५.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त २६ – पापमोचन सूक्त

द्यावा पृथ्वी की स्तुति

मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ सचेतसौ यह अप्रथेथाममिता योजनानि ।
प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां ते नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२६.१॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों मनोहर भोग वाले तथा समान विचार वाली हैं, हम आपकी महिमा जानते हुए, आपकी प्रार्थना करते हैं। आप दोनों असीमित योजनों की दूरी तक फैले हैं और देवों तथा मनुष्यों के धन-वैभव के मूल कारण हैं। आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२६.१॥

प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां प्रवृद्धे देवी सुभगे उरूची ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२६.२॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों समस्त ऐश्वर्यों की प्रतिष्ठा करने वाली हैं तथा समस्त प्राणियों के आश्रय-स्थल हैं । आप दान आदि गुणों तथा समस्त सौभाग्यों से सम्पन्न हैं । आप हमारे लिए सुखदायी बनकर हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२६.२॥

असन्तापे सुतपसौ हुवेऽहमुर्वी गम्भीरे कविभिर्नमस्ये ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२६.३॥

समस्त प्राणियों के कष्टों को दूर करने वाली, क्रान्तदर्शी ऋषियों द्वारा नमनीय, अत्यधिक विस्तृत तथा अत्यधिक गम्भीर द्यावा-पृथिवी का हम आवाहन करते हैं। वह द्यावा-पृथिवी हमारे लिए सुखदायी हों और हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२६.३॥

यह अमृतं बिभृथो यह हवींषि यह स्रोत्या बिभृथो यह मनुष्यान् ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२६.४॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों जो समस्त प्राणियों के अमरत्वरूप जल तथा हविष्यान्न धारण करती हैं, जो प्रवमान नदियों तथा मनुष्यों को धारण करती हैं, ऐसे आप हमारे लिए सुखदायी हों और समस्त पापों से हमें मुक्त करें ॥४,२६.४॥

यह उस्रिया बिभृथो यह वनस्पतीन् ययोर्वां विश्वा भुवनान्यन्तः ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२६.५॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप जिन समस्त गौओं तथा वनस्पतियों का पोषण करती हैं, आप दोनों के बीच में जो समस्त विश्व निवास करता है, ऐसे आप दोनों हमारे लिए सुखदायी हों और हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२६.५॥

यह कीलालेन तर्पयथो यह घृतेन याभ्यामृते न किं चन शक्नुवन्ति ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२६.६॥

हे द्यावा-पृथिवि ! जो आप अन्न और जल द्वारा समस्त विश्व का पालन करती हैं। आपके बिना मनुष्य कोई भी कार्य करने में सक्षम नहीं है, ऐसे आप हमारे लिए सुखदायी हों और हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२६.६॥

यन् मेदमभिशोचति यहनयहन वा कृतं पौरुषेयान् न दैवात्।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२६.७॥

जिस किसी कारण से मनुष्यकृत अथवा देवकृत कर्म हमें झुलसा रहा है और जिन-जिन कारणों से हमने दूसरे पाप किए हैं, उन सभी के निवारण के लिए हम द्यावा-पृथिवी की प्रार्थना करते हैं और उन्हें पुकारते हैं । वह हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२६.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त २७ – पापमोचन सूक्त

मरुत की स्तुति

मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाते अवन्तु ।
आशून् इव सुयमान् अह्व ऊतयह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४,२७.१॥

हम मरुतों के माहात्म्य को जानते हैं, वह हमें अपना कहें और हमारे अन्न की सुरक्षा करते हुए हमारे बल को भी रणक्षेत्र में सुरक्षित रखें । चलने वाले श्रेष्ठ घोड़ों के समान हम उन मरुतों को अपनी सुरक्षा के लिए बुलाते हैं। वह हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२७.१॥

उत्समक्षितं व्यचन्ति यह सदा य आसिञ्चन्ति रसमोषधीषु ।
पुरो दधे मरुतः पृश्निमातृंस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४,२७.२॥

जो मरुद्गण मेघों को आकाश में फैलाते हैं और ब्रीहि जौ, तरुगुल्म आदि औषधियों को वृष्टि जल से सींचते हैं, उन 'पृश्नि' माता वाले मरुतों की हम प्रार्थना करते हैं, वह हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२७.२॥

पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ ।
शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४,२७.३॥

हे मरुद्देवो ! आप जो क्रान्तदर्शी होकर गौओं के दुग्ध तथा औषधियों के रस को समस्त शरीर में संव्याप्त करते हैं तथा अश्वों में वेग को संव्याप्त करते हैं, ऐसे आप सब हमें सामर्थ्य तथा सुख प्रदान करने वाले हों और हमें समस्त पापों से छुड़ाएँ ॥४,२७.३॥

अपः समुद्राद्दिवमुद्वहन्ति दिवस्पृथिवीमभि यह सृजन्ति ।

यह अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४,२७.४॥

जो मरुद्गण जल को समुद्र से अन्तरिक्ष तक पहुँचाते हैं और अन्तरिक्ष से पृथ्वी को लक्ष्य करके पुनः छोड़ते हैं, वह जल के साथ विचरण करने वाले जल के स्वामी मरुद्गण हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२७.४॥

यह कीलालेन तर्पयन्ति यह घृतेन यह वा वयो मेदसा संसृजन्ति ।
यह अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४,२७.५॥

जो मरुद्गण अन्न और जल द्वारा समस्त मनुष्यों को तृप्त करते हैं, जो अन्न को पुष्टिकारक पदार्थों के साथ पैदा करते हैं तथा जो मेघ स्थित जल के अधिपति बनकर सब जगह वृष्टि करते हैं, वह मरुद्गण हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२७.५॥

यदीदिदं मरुतो मारुतेन यदि देवा दैव्येनेदृगार ।
यूयमीशिध्वे वसवस्तस्य निष्कृतेस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः
॥४,२७.६॥

सबको आवास देने वाले हे दिव्य मरुतो ! देवताओं से सम्बन्धित अपराध के कारण हम जो दुःख पा रहे हैं, उस दुःख अथवा पाप को दूर करने में आप ही सक्षम हैं। आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२७.६॥

तिग्ममनीकं विदितं सहस्वन् मारुतं शर्धः पृतनासूग्रम् ।
स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वंहसः
॥४,२७.७॥

सेना के सदृश मरुतों का तीक्ष्ण तथा प्रचण्ड बल रणक्षेत्र में दुःसह होता है । हम ऐसे मरुतों की प्रार्थना करते हुए, उन्हें आहूत करते हैं। वह हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२७.७॥

सूक्त २८ – पापमोचन सूक्त

भव और शर्व की स्तुति

भवाशर्वौ मन्वे वां तस्य वित्तं ययोर्वामिदं प्रदिशि यद्विरोचते ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२८.१॥

हे भव एवं शर्व (जगत् को उत्पन्न और उसका विनाश करने वाले) देवो ! हम आपकी महिमा को जानते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् आपकी सामर्थ्य से आलोकित होता है । आप समस्त मनुष्यों तथा पशुओं के स्वामी हैं ।आप दोनों में समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२८.१॥

ययोरभ्यध्व उत यद्दूरे चिद्यौ विदिताविषुभृतामसिष्ठौ ।

यावस्येशथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२८.२॥

पास तथा दूर के क्षेत्र में जो कुछ भी है, वह उन्हीं दोनों के नियन्त्रण में है । वह धनुष पर बाणों का संधान करने तथा चलाने में विख्यात हैं । वह मनुष्यों तथा पशुओं के ईश्वर हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२८.२॥

सहस्राक्षौ वृत्रहना हुवेहं दूरेगव्यूती स्तुवन्न् एम्युग्रौ ।
यावस्येशथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२८.३॥

हजार आँखों वाले, शत्रुओं का संहार करने वाले तथा दूर तक विचरण करने वाले प्रचण्ड भव और शर्व देवों की हम प्रार्थना करते हुए उनका आवाहन करते हैं। वह मनुष्यों और पशुओं को समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२८.३॥

यावारेभाथे बहु साकमग्रे प्र चेदस्राष्ट्रमभिभां जनेषु ।

यावस्येशथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२८.४॥

आप दोनों ने सृष्टि के प्रारम्भ में अनेकों कार्य साथ-साथ कियह। आपने ही मनुष्यों में प्रतिभा उत्पन्न की । हे समस्त मनुष्यों तथा पशुओं के ईश्वर ! आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२८.४॥

ययोर्वधान् नापपद्यते कश्चनान्तर्देवेषूत मानुषेषु ।
यावस्येशथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२८.५॥

जिन भव और शर्व के संहारक हथियारों से देवों तथा मनुष्यों में से कोई भी बच नहीं सकता तथा जो मनुष्यों और पशुओं के स्वामी हैं, वह देव हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२८.५॥

यः कृत्याकृन् मूलकृद्यातुधानो नि तस्मिन् धत्तं वज्रमुग्रौ ।

यावस्येशथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२८.६॥

जो शत्रु, कृत्या प्रयोग से विनिर्मित पिशाचों के द्वारा अनिष्ट करते हैं तथा जो राक्षस, वंशवृद्धि की मूल, हमारी सन्तानों को विनष्ट करते हैं, हे प्रचण्ड वीर ! आप उन पर अपने वज्र से प्रहार करें। समस्त मनुष्यों तथा पशुओं के स्वामी आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२८.६॥

अधि नो ब्रूतं पृतनासूग्रौ सं वज्रेण सृजतं यः किमीदी ।
स्तौमि भवाशर्वौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२८.७॥

हे उग्रवीर भव-शर्व देवो ! आप हमारे हित में उपदेश करें तथा जो स्वार्थी हैं, उन पर प्रहार करें । हम आपको स्वामी मानकर पुकारते हैं, आपकी स्तुति करते हैं, आप हमें पापों से बचाएँ ॥४,२८.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त २९ – पापमोचन सूक्त

मित्र और वरुण देव की प्रशंसा

मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे ।
प्र सत्यावानमवथो भरेषु तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२९.१॥

हे मित्र और वरुणदेव ! समान चित्त वाले आप यज्ञ और जल का संवर्द्धन करने वाले हैं। आप विद्रोहियों को उनके स्थान से हटा देते हैं तथा सत्यनिष्ठों की रणक्षेत्र में सुरक्षा करते हैं। हम आपके माहात्म्य का गान कराते हैं, आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२९.१॥

सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे प्र सत्यावानमवथो भरेषु ।
यौ गछथो नृचक्षसौ बभ्रुणा सुतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२९.२॥

है समान विचार वाले मित्रावरुण ! आप विद्रोहियों को उनके स्थान से च्युत करते हैं तथा सत्यनिष्ठों की रणक्षेत्र में सुरक्षा करते हैं । आप दिन और रात के अधिपति होने के कारण मनुष्यों के समस्त कर्मों का निरीक्षणऔर सोमरस का पान करते हैं। आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२९.२॥

यावङ्गिरसमवथो यावगस्तिं मित्रावरुणा जमदग्निमल्लिम् ।
यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२९.३॥

हे मित्रावरुण ! आप दोनों 'अंगिरा', 'अगस्त्य, अत्रि' और 'जमदग्नि'ष की सुरक्षा करते हैं तथा कश्यप और 'वसिष्ठ ऋषि की भी सुरक्षा करते हैं। आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२९.३॥

यौ श्यावाश्वमवथो वाध्र्यश्वं मित्रावरुणा पुरुमीढमल्लिम् ।
यौ विमदमवथो सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२९.४॥

हे मित्रावरुण ! आप दोनों 'श्यावाश्व', 'वधय्श्व', 'विमद', 'पुरुमीढ' तथा 'अत्रि' नामक ऋषियों की सुरक्षा करते हैं । आप दोनों सप्त ऋषियों की भी सुरक्षा करते हैं। आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२९.४॥

यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम्।
यौ कक्षीवन्तमवथो प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२९.५॥

हे मित्रावरुण ! आप दोनों 'भरद्वाज', 'विश्वामित्र', 'कुत्स', 'गविष्ठिर', 'कक्षीवान्' तथा 'कण्व' नामक ऋषियों की सुरक्षा करते हैं । अतः आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२९.५॥

यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ।
यौ गोतममवथो प्रोत मुग्दलं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४,२९.६॥

हे मित्रावरुण ! आप दोनों 'मेधातिथि', 'त्रिशोक', 'काव्य', 'उशना' तथा 'गोतम' नामक ऋषियों की सुरक्षा करते हैं। अत: आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२९.६॥

ययो रथः सत्यवर्त्म र्जुरश्मिर्मिथुया चरन्तमभियाति दूषयन्।
स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः
॥४,२९.७॥

जिन मित्रावरुण का सत्यमार्ग तथा सरल किरणों वाला रथ मिथ्याचारी पुरुषों को बाधा पहुँचाने के लिए उनके सम्मुख आता है, उन मित्रावरुण की प्रार्थना करते हुए, हम उन्हें बारम्बार आहूत करते हैं। वह हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४,२९.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त ३० – राष्ट्रदेवी सूक्त

ब्रह्मवादिनी पुत्री वाक् का वर्णन

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुनोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥४,३०.१॥

(वाग्देवी का कथन) मैं रुद्रगण एवं वसुगणों के साथ भ्रमण करती हूँ। मैं ही आदित्यगणों और समस्त देवों के साथ रहती हैं । मित्रावरुण, इन्द्र, अग्नि तथा दोनों अश्विनीकुमार सभी को मैं ही धारण करती हूँ ॥४,३०.१॥

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तः ॥४,३०.२॥

मैं वाग्देवी जगदीश्वरी और धन प्रदात्री हूँ। मैं ज्ञानवती एवं यज्ञोपयोगी देवों (वस्तुओं) में सर्वोत्तम हूँ । मेरा स्वरूप विभिन्न रूपों में विद्यमान है तथा मेरा आश्रय स्थान विस्तृत है। सभी देव विभिन्न प्रकार से मेरा ही प्रतिपादन करते हैं ॥४,३०.२॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम् ।
यं कामयह तन्तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥४,३०.३॥

देवगण और मनुष्यगण श्रद्धापूर्वक जिसका मनन करते हैं, वह सभी विचार सन्देश मेरे द्वारा ही प्रसारित किए जाते हैं। जिसके ऊपर मेरी कृपा-दृष्टि होती है, वह बलशाली, स्तोता, ऋषि तथा श्रेष्ठ बुद्धिमान होते हैं ॥४,३०.३॥

मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रुद्धेयं ते वदामि ४,३०.॥४॥

प्राणियों में जो जीवनीशक्ति (प्राण) है, दर्शन क्षमता है, ज्ञान-श्रवण सामर्थ्य है, अन्न – भोग करने की सामर्थ्य है, वह सभी मुझे वाग्देवी के सहयोग से ही प्राप्त होती हैं । जो मेरी सामर्थ्य को नहीं जानते, वह विनष्ट हो जाते हैं। हे बुद्धिमान् मित्रो ! आप ध्यान दें, जो भी मेरे द्वारा कहा जा रहा है, वह श्रद्धा का विषय हैं ॥४,३०.४॥

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोमि अहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥४,३०.५॥

जिस समय रुद्रदेव ब्रह्मद्रोही शत्रुओं का विध्वंस करने के लिए सचेष्ट होते हैं, उस समय दुष्टों को पीड़ित करने वाले रुद्र के धनुष – बाण का सन्धान मैं ही करती हूँ । मनुष्यों के हित के लिए मैं ही संग्राम करती हूँ। मैं ही द्युलोक और पृथ्वीलोक दोनों को संव्याप्त करती हूँ ॥४,३०.५॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राव्या यजमानाय सुन्वते
॥४,३०.६॥

सोम, त्वष्टा, पूषा और भग सभी देव मेरा ही आश्रय ग्रहण करते हैं। मेरे द्वारा ही, हविष्यान्नादि उत्तम वियों से देवों को परितृप्त किया जाता है और सोमरस के अभिषवणकर्ता यजमानों को यज्ञ का अभीष्ट फलरूप धन प्रदान किया जाता है ॥४,३०.६॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि
॥४,३०.७॥

जगत् के सर्वोच्च स्थान पर स्थित दिव्यलोक को मैंने ही प्रकट किया है। मेरा उत्पत्ति स्थल विराट् आकाश में अप् (मूल सृष्टि तत्त्व) में हैं, उसी स्थान से सम्पूर्ण विश्व को संव्याप्त करती हूँ। महान् अन्तरिक्ष को मैं अपनी उन्नत देह से स्पर्श करती हूँ ॥४,३०.७॥

अहमेव वातैव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिम्ना सं बभूव ॥४,३०.८॥

समस्त लोकों को विनिर्मित करती हुई मैं वायु के समान सभी भुवनों में संचरित होती हूँ। मेरी महिमा स्वर्गलोक और पृथ्वी से भी महान् है ॥४,३०.८॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त - ३१- सेनानिरीक्षण सूक्त

क्रोध के अभिमानी देवता मन्यु का वर्णन

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणा ह्रषितासो मरुत्वन् ।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना उप प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः
॥४,३१.१॥

हे मन्यो !आपके सहयोग से रथारूढ़ तथा प्रसन्नचित्त होकर अपने आयुधों को तीक्ष्ण करके, अग्नि के सदृश तीक्ष्ण दाह उत्पन्न करने वाले मरुद्गण आदि युद्धनायक हमारी सहायतार्थ युद्ध क्षेत्र में गमन करें ॥४,३१.१॥

अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व
॥४,३१.२॥

हे मन्यो ! आप अग्नि सदृश प्रदीप्त होकर शत्रुओं को पराभूत करें । हे सहनशक्तियुक्त मन्यो ! आपका आवाहन किया गया है। आप हमारे संग्राम में नायक बने । शत्रुओं का संहार करके उनकी सम्पदा हमें दें। हमें बल प्रदान करके हमारे शत्रुओं को दूर भगाएँ ॥४,३१.२॥

सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मै रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयासा एकज त्वम् ॥४,३१.३॥

हे मन्यो ! हमारे विरुद्ध सक्रिय शत्रुओं को आप पराभूत करें। आप शत्रुओं को तोड़ते हुए और कुचलते हुए उन पर आक्रमण करें। आपकी प्रभावपूर्ण क्षमताओं को रोकने में कौन सक्षम हो सकता है ? हे अद्वितीय मन्यो ! आप स्वयं संयमशील होकर शत्रुओं को नियन्त्रण में करते हैं ॥४,३१.३॥

एको बहूनामसि मन्य ईडिता विशंविशं युद्धाय सं शिशाधि।

अकृत्तरुक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मसि ॥४,३१.४॥

हे मन्यो !आप अकेले हीं अनेकों द्वारा सत्कार योग्य हैं । आप युद्ध के निमित्त मनुष्य को तीक्ष्ण बनाएँ । हे अक्षय प्रकाशयुक्त !आपकी मित्रता के सहयोग से हम हर्षित होकर विजय प्राप्ति के लिए सिंहनाद करते हैं ॥४,३१.४॥

विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवोऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ॥४,३१.५॥

हे मन्यो !इन्द्र के सदृश विजेता, असन्तुलित न बोलने वाले आप हमारे अधिपति हों । हे सहिष्णु मन्यो ! आपके निमित्त हम प्रिय स्तोत्र का उच्चारण करते हैं। हम उस स्रोत के ज्ञाता हैं, जिससे आप प्रकट होते हैं ॥४,३१.५॥

आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्षि सहभूत उत्तरम् ।

क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥४,३१.६॥

हे वज्र सदृश शत्रुसंहारक मन्यो ! शत्रुओं को विनष्ट करना आपके सहज स्वभाव में है । हे शत्रु पराभवकर्ता मन्यो ! आप श्रेष्ठ तेजस्विता को ग्रहण करते हैं । कर्मशक्ति के साथ युद्ध क्षेत्र में आप हमारे लिए सहायक हों । आपका आवाहन असंख्य वीरों द्वारा किया जाता है ॥४,३१.६॥

संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं धत्तां वरुणश्च मन्युः ।
भियो दधाना हृदयहषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ॥४,३१.७॥

स्वयं अस्थिर हो जातक शत्रुओं को नियन्त्रण को रोकने में कौन सक्षम को तोड़ते हुए और व हे वरुण और मन्यो (अथवा वरणीय मन्यो) ! आप उत्पादित और संगृहीत ऐश्वर्य हमें प्रदान करें । भयभीत हृदय वाले शत्रु हमसे पराभूत होकर दूर चले जाएँ ॥४,३१.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त ३२ – सेनासंयोजन सूक्त

मन्यु की स्तुति

यस्ते मन्योऽविधद्वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक्।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा वयं सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥४,३२.१॥

हे वज्रबत् तीक्ष्ण बाणतुल्य और क्रोधाभिमानी देव मन्यो ! जो साधक आपको ग्रहण करते हैं, वह सभी प्रकार की शक्ति और सामर्थ्य को निरन्तर पशत्रु ष्ट करते हैं । बलवर्द्धक और विजयदाता आपके सहयोग से हम (विरोधी) दासों और आर्यों को अपने आधिपत्य में करते हैं ॥४,३२.१॥

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः ।

मन्युं विश ईडते मानुषीर्याः पहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥४,३२.२॥

मन्यु ही इन्द्रदेव हैं, यज्ञ संचालक वरुण और जातवेदा अग्नि हैं । (यह सभी देवता मन्युयुक्त हैं) सम्पूर्ण मानव प्रजाएँ मन्यु की प्रशंसा करती हैं । हे मन्यो ! स्नेहयुक्त होकर आप तप से हमारा संरक्षण करें ॥४,३२.२॥

अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून् । अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥४,३२.३॥

हे मन्यो ! आप महान् सामर्थ्यशाली हैं, आप यहाँ पधारें । अपनी तपः सामर्थ्य से युक्त होकर शत्रुओं का विध्वंस करें ।आप शत्रुविनाशक, वृत्रहन्ता और दस्युओं के दलनकर्ता हैं । हमें सभी प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करें ॥४,३२.३॥

त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्भामो अभिमातिषाहः ।

विश्वचर्षणिः सहुरिः सहीयान् अस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥४,३२.४॥

हे मन्यो । आप विजयी शक्ति से सम्पन्न, स्वसामर्थ्य से बढ़ने वाले, तेजोयुक्त, शत्रुओं के पराभवकर्ता, सबके निरीक्षण में सक्षम तथा बलशाली हैं । संग्राम-क्षेत्र में आप हमारे अन्दर ओज की स्थापना करें ॥४,३२.४॥

अभागः सन्न् अप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः । तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीडाहं स्वा तनूर्बलदावा न एहि ॥४,३२.५॥

हे श्रेठ ज्ञान सम्पन्न मन्यो ! आपके साथ भागीदार न हो पाने के कारण हम विलग होकर दूर चले गए हैं। महिमामय आपसे विमुख होकर हम कर्महीन हो गए हैं, संकल्पहीन होकर (लज्जित स्थिति में) आपके पास आए हैं। हमारे शरीरों में बल का संचार करते हुए आप पधारें ॥४,३२.५॥

अयं ते अस्म्युप न एह्यर्वाङ्प्रतीचीनः सहुरे विश्वदावन् ।
मन्यो वज्रिन्न् अभि न आ ववृत्स्व हनाव दस्यूंरुत बोध्यापेः
॥४,३२.६॥

हे मन्यो !हम आपके समीप उपस्थित हैं। आप कृपापूर्वक हमारे आघातों को सहने तथा सबको धारण करने में समर्थ हैं । हे वज्रधारी !आप हमारे पास आएँ, हमें मित्र समझें, ताकि हम दुष्टों को मार सकें ॥४,३२.६॥

अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा नोऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभावुपांशु प्रथमा पिबाव
॥४,३२.७॥

हे मन्यो ! आप हमारे समीप आएँ । हमारे दाहिने (हमारे अनुकूल) होकर रहें । हम दोनों मिलकर शत्रुओं का संहार करने में समर्थ होंगे। हम आपके लिए मधुर और श्रेष्ठ धारक (सोम) का हवन करते हैं । हम दोनों एकान्त में सर्वप्रथम इस रस का पान करें ॥४,३२.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त ३३ – पापनाशन सूक्त

अग्नि देव की स्तुति

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥४,३३.१॥

हे अग्ने ! आप हमारे पापों को भस्म करें । हमारे चारों ओर ऐश्वर्य प्रकाशित करें तथा पापों को विनष्ट करें ॥४,३३.१॥

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे ।
अप नः शोशुचदघम् ॥४,३३.२॥

हे अग्निदेव ! उत्तम क्षेत्र, उत्तम मार्ग और उत्तम धन की इच्छा से हम आपका यजन करते हैं। आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥४,३३.२॥

प्र यद्धन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः ।
अप नः शोशुचदघम् ॥४,३३.३॥

हे अग्निदेव ! हम सभी साधक वीरता और बुद्धिपूर्वक आपकी विशिष्ट प्रकार से भक्ति करते हैं। आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥४,३३.३॥

प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायहमहि प्र ते वयम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥४,३३.४॥

हे अग्निदेव ! हम सभी और यह विद्वद्गण आपकी उपासना से आपके सदृश प्रकाशवान् हुए हैं, अत: आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥४,३३.४॥

प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः ।
अप नः शोशुचदघम् ॥४,३३.५॥

इन बल-सम्पन्न अग्निदेव की देदीप्यमान किरणें सर्वत्र फैल रही हैं, ऐसे वह हमारे पापों को विनष्ट करें ॥४,३३.५॥

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।
अप नः शोशुचदघम् ॥४,३३.६॥

हे बल-सम्पन्न अग्निदेव ! आप निश्चय ही सभी ओर व्याप्त होने वाले हैं, आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥४,३३.६॥

द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय ।
अप नः शोशुचदघम् ॥४,३३.७॥

हे सर्वतोमुखी अग्ने !आप नौका के सदृश शत्रुओं से हमें पार ले जाएँ। आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥४,३३.७॥

स नः सिन्धुमिव नावाति पर्ष स्वस्तयह ।
अप नः शोशुचदघम् ॥४,३३.८॥

हे अग्निदेव ! नौका द्वारा नदी के पार ले जाने के समान आप हिंसक शत्रुओं से हमें पार ले जाएँ। आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥४,३३.८॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त ३४- ब्रह्मौदन सूक्त

ब्रह्मौदन की स्तुति

ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं वामदेव्यमुदरमोदनस्य ।
छन्दांसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः ॥४,३४.१॥

इस ओदन (ब्रह्मौदन) का शीर्ष भाग ब्रह्म है, पृष्ठभाग बृहत् (विशाल) है, वामदेव (ऋषि अथवा उत्पादक सामर्थ्य) से सम्बन्धित इसका उदर है, विविध छन्द इसके पार्श्वभाग हैं तथा सत्य इसका मुख हैं। विस्तार पाने वाला यह यज्ञ तप से उत्पन्न हुआ है ॥४,३४.१॥

अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम् ।

नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम् ॥४,३४.२॥

यह (ब्रह्मौदन) अस्थिरहित (कोई भी इच्छित आकार लेने में सक्षम और पवित्र है । वायु से (शरीर में प्राणायाम आदि के द्वारा) शुद्ध और पवित्र होकर यह पवित्र लोकों को ही प्राप्त होता है। अग्नि इसके शिश्न (उत्पादक अंग) को नष्ट नहीं करता । स्वर्ग में (इसका तेजस् धारण करने वाली) इसकी बहुत सी स्त्रियाँ (उत्पादक शक्तियों) हैं ॥४,३४.२॥

विष्टारिणमोदनं यह पचन्ति नैनान् अवर्तिः सचते कदा चन ।
आस्ते यम उप याति देवान्त्सं गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः ॥४,३४.३॥

जो (साधक) इस विस्तारित होने वाले ओदन (स्थूल या सूक्ष्म अन्न) को पकाते (प्रयोग में लाने योग्य परिपक्व बनाते) है, उन्हें कभी दरिद्रता नहीं व्यापती । वह यम(जीवन के दिव्य अनुशासन) में स्थित रहते हैं, देवों की निकटता प्राप्त करते

हैं तथा सोम-पान योग्य गंधर्वादि के साथ आनन्दित होते हैं ॥४,३४.३॥

विष्टारिणमोदनं यह पचन्ति नैनान् यमः परि मुष्णाति रेतः । रथी ह भूत्वा रथयान ईयते पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति ॥४,३४.४॥

जो याजक इस अन्न को पकाते हैं, यमदेवता उनको वीर्यहीन नहीं करते। वह अपने जीवनपर्यन्त रथ पर आरूढ़ होकर पृथ्वी पर विचरण करते हैं और पक्षी के सदृश बनकर द्युलोक को अतिक्रमण करके ऊपर गमन करते हैं ॥४,३४.४॥

एष यज्ञानां विततो वहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा विवेश । आण्डीकं कुमुदं सं तनोति बिसं शालूकं शफको मुलाली ।

एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥४,३४.५॥

यह यज्ञ समस्त यज्ञों में श्रेष्ठ है । इस अन्न को पकाकर याजकगण स्वर्गलोक में प्रविष्ट होते हैं । (यह यज्ञ) अण्ड में स्थित मूलशक्ति को, शान्तचित्त से, कमलनाल की तरह (तीव्र गति से) विस्तारित करता है । (हे साधक !) यह सब धाराएँ (इसके माध्यम से) तुम्हें प्राप्त हों । स्वर्ग की मधुर रसवाहिनी दिव्य नदियाँ तुम्हारे पास आएँ ॥४,३४.५॥

घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥४,३४.६॥

हे सव (सौमयज्ञ) के अनुष्ठानकर्ता ! घृत के प्रवाह वाली, शहद से पूर्ण किनारों वाली, निर्मल जल वाली, दुग्ध, जल और दहीं से पूर्ण समस्त धाराएँ मधुरतायुक्त पदार्थों को पुष्ट करती हुईं, द्युलोक में आपको प्राप्त हों ॥४,३४.६॥

चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्नामुदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥४,३४.७॥

दूध, दही और जल से पूर्ण चार घड़ों को हम चार दिशाओं में स्थापित करते हैं । स्वर्गलोक में दुग्ध आदि की धाराएँ मधुरता को पुष्ट करती हुई, आपको प्राप्त हों और जल से पूर्ण सरिताएँ भी आपको प्राप्त हों ॥४,३४.७॥

इममोदनं नि दधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम् ।
स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु ॥४,३४.८॥

यह विस्तारित होने वाला स्वर्गीय ओदन' हम ब्राह्मणों (ब्रह्मनिष्ठ साधकों) में स्थागित करते हैं, यह ओदन स्वधा से दुग्ध आदि के द्वारा वर्द्धित होने के कारण नष्ट न हो और अभिलषित फल प्रदान करने वाली कामधेनु के रूप में परिणत हो जाए ॥४,३४.८॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त ३५ – मृत्युसंतरण सूक्त

प्राणियों के निर्माणकर्ता देवों का वर्णन

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत्।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥४,३५.१॥

जिस ओदन को सर्वप्रथम उत्पन्न प्रजापति ने तपस्या के द्वारा अपने कारण ब्रह्म के लिए बनाया था, जिस प्रकार नाभि समस्त जीवों को विशेष रूप से धारण करने वाली है, उसी प्रकार वह ओदन पृथ्वी आदि को धारणकरने वाला है । उस ओदन के द्वारा हम मृत्यु को लाँघते हैं ॥४,३५.१॥

यहनातरन् भूतकृतोऽति मृत्युं यमन्वविन्दन् तपसा श्रमेण ।

यं पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥४,३५.२॥

जिस अन्न को तपश्चर्या द्वारा भूतों के सृष्टिकर्ता देवताओं ने प्राप्त किया है, जिसके द्वारा वह मृत्यु का अतिक्रमण कर गए तथा जिसको पहले उत्पन्न 'ब्रह्म' ने अपने कारण ब्रह्म' के लिए पकाया; उस अन्न के द्वारा हम. मृत्यु को लाँघते हैं ॥४,३५.२॥

यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं यो अन्तरिक्षमापृणाद्रसेन ।
यो अस्तभ्नाद्दिवमूर्ध्वो महिम्ना तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥४,३५.३॥

जो ओदन समस्त प्राणियों को भोजन प्रदान करने वाली पृथ्वी को धारण करता है, जो ओदन अपने रस के द्वारा अन्तरिक्ष को परिपूर्ण करता है तथा जो ओदन अपने माहात्म्य के द्वारा द्युलोक को ऊपर ही धारण किए रहता है, उस ओदन के द्वारा हम मृत्यु का अतिक्रमण करते हैं ॥४,३५.३॥

यस्मान् मासा निर्मितास्त्रिंशदराः संवत्सरो यस्मान् निर्मितो द्वादशारः ।
अहोरात्रा यं परियन्तो नापुस्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥४,३५.४॥

जिस ब्रह्म सम्बन्धी ओदन से बारह महीने उत्पन्न हुए हैं, जिससे रथचक्र के 'अरे' रूप तीस दिन उत्पन्न हुए हैं, जिससे बारह महीने वाले संवत्सर उत्पन्न हुए हैं तथा जिस ओदन को व्यतीत होते हुए दिन और रात प्राप्त नहीं कर सकते, उस ओदन के द्वारा हम मृत्यु का उल्लंघन करते हैं ॥४,३५.४॥

यः प्राणदः प्राणदवान् बभूव यस्मै लोका घृतवन्तः क्षरन्ति ।
ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥४,३५.५॥

जो ओदन मरणासन्नों को प्राण प्रदान करने वाला होता है, जिसके लिए समस्त जगत् घृत-धाराओं को प्रवाहित करता

है तथा जिसके ओजस् से समस्त दिशाएँ ओजस्वी बनती हैं, उस ओदन के द्वारा हम मृत्यु काअतिक्रमण करते हैं ॥४,३५.५॥

यस्मात्पक्कादमृतं संबभूव यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव ।
यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥४,३५.६॥

जिस पके हुए ओदन से द्युलोक में स्थित अमृत उत्पन्न हुआ, जो गायत्री छन्द का देवता हुआ था जिसमें समस्त प्रकार के ऋक्, यजु, साम आदि वेद निहित हैं, उस ओदन के द्वारा हम मृत्यु का उल्लंघन करते हैं ॥४,३५.६॥

अव बाधे द्विषन्तं देवपीयुं सपत्ना यह मेऽप ते भवन्तु ।
ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि शृण्वन्तु मे श्रद्दधानस्य देवाः ॥४,३५.७॥

विद्वेष करने वाले शत्रुओं तथा देवत्व-हिंसकों के कार्य में हम बाधा डालते हैं। हमारे शत्रु विनष्ट हो जाएँ, इसीलिए सबको विजित करने वाले ब्रह्मरूप ओदन पकाते हैं । अतः समस्त देवता हमारी पुकार को सुनें ॥४,३५.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त ३६- सत्यौजा अग्नि सूक्त

सत्य एवं ओज वाले अग्नि देव की स्तुति

तान्त्सत्यौजाः प्र दहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा ।
यो नो दुरस्याद्दिप्साच्चाथो यो नो अरातियात्॥४,३६.१॥

जो शत्रु हम पर झूठा दोषारोपण करते हैं । जो हमें मारने की इच्छा करते हैं तथा जो हमसे शत्रुता का व्यवहार करते हैं, उन शत्रुओं को सत्य बल वाले वैश्वानर अग्निदेव प्रबलता से भस्मसात् करें ॥४,३६.१॥

यो नो दिप्सादिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति ।
वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् ॥४,३६.२॥

जो शत्रु हम निरपराधों को मारना चाहते हैं, जो केवल सताने की इच्छा से हमें मारना चाहते हैं, उन शत्रुओं को हम वैश्वानर अग्निदेव के दोनों दाढ़ों में डालते हैं ॥४,३६.२॥

य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशेऽमावास्ये ।
क्रव्यादो अन्यान् दिप्सतः सर्वांस्तान्त्सहसा सहे ॥४,३६.३॥

जो घरों में अमावास्या की अँधेरी रात में भी (अपने शिकार को) खोजते-फिरते हैं, ऐसे परमांसभोजी और घातक पिशाचों (कृमियों) को हम मंत्र बल से पराभूत करते हैं ॥४,३६.३॥

सहे पिशाचान्त्सहसैषां द्रविणं ददे ।
सर्वान् दुरस्यतो हन्मि सं म आकूतिर्ऋध्यताम् ॥४,३६.४॥

रक्त पीने वाले पिशाचों को मंत्र बल द्वारा हम पराभूत करते हैं और उनके वैभव का हरण करते हैं । दुष्टता का बर्ताव

करने वालों को हम नष्ट करते हैं । हमारा वांछित संकल्प हर्षदायक तथा सफल हो ॥४,३६.४॥

यह देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम् ।
नदीषु पर्वतेषु यह सं तैः पशुभिर्विदे ॥४,३६.५॥

जो देवता या दिव्य पुरुष सूर्य की गति का भाप कर सकते हैं और उन (पिशाचों) के साथ विनोद कर सकते हैं, उनके तथा नदियों एवं पर्वतों पर रहने वाले पशुओं के माध्यम से हम उन्हें भ६ प्रकार जानें ॥४,३६.५॥

तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव ।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम् ॥४,३६.६॥

जिस प्रकार गौओं के स्वामी को व्याघ्र पीड़ित करते रहते हैं, उसी प्रकार मंत्र बल द्वारा हम राक्षसों को पीड़ित करने वाले बनें । जिस प्रकार सिंह को देखकर भय के कारण

कुत्ते छिप जाते हैं, उसी प्रकार यह पिशाच हमारे मंत्र बल को देखकर पतित हो जाएँ ॥४,३६.६॥

न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैः न वनर्गुभिः ।
पिशाचास्तस्मान् नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे ॥४,३६.७॥

पिशाच हममें प्रविष्ट नहीं हो सकते। हम चोरों और डाकुओं से नहीं मिलते । जिस गाँव में हम प्रविष्ट होते हैं, उस गाँव के पिशाच विनष्ट हो जाते हैं ॥४,३६.७॥

यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम ।
पिशाचास्तस्मान् नश्यन्ति न पापमुप जानते ॥४,३६.८॥

हमारा यह मंत्र बलजिस गाँव में प्रविष्ट होकर स्थित रहता है, उस गाँव के राक्षस विनष्ट हो जाते हैं । इसलिए हिंसायुक्त कार्यों को वहाँ के निवासी जानते ही नहीं ॥४,३६.८॥

यह मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनं मशका इव ।
तान् अहं मन्ये दुर्हितान् जने अल्पशयून् इव ॥४,३६.९॥

जैसे छोटे कीट, जनसमूह के चलने से पिसकर मर जाते हैं, जैसे हाथी के शरीर पर बैठे हुए मच्छर हाथी को क्रोधित करने के कारण मारे जाते हैं, वैसे समस्त राक्षसों को हम मंत्र बल से विनष्ट हुआ हीं समझते हैं ॥४,३६.९॥

अभि तं निर्ऋतिर्धत्तामश्वमिव अश्वाभिधान्या ।
मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान् न मुच्यते ॥४,३६.१०॥

जिस प्रकार अश्व बाँधने वाली रस्सी से अश्वों को बाँधते हैं, उसी प्रकार उस शत्रु को पापदेव निति अपने पाशों से बाँधे । जो शत्रु हम पर क्रोधित होते हैं, वह निति के पाशों से मुक्त न हों ॥४,३६.१०॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त ३७- कृमिनाशन सूक्त

विभिन्न जड़ीबूटियों का वर्णन

त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्योषधे ।
त्वया जघान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्यः ॥४,३७.१॥

हे औषधे ! सर्वप्रथम 'अथर्वा ऋषि ने आपके द्वारा राक्षसों (रोगकृमियों) को विनष्ट किया था। 'कश्यप 'कण्व' तथा अगस्त्य' आदि ऋषियों ने भी आपके द्वारा रोगाणुओं को विनष्ट किया था, ऐसा हम भी करते हैं ॥४,३७.१॥

त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वांस्चातयामहे ।
अजशृङ्ग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय ॥४,३७.२॥

है अजशृंगी औषधे ! आपके द्वारा हम उपद्रव करने वाले गन्धर्वो तथा अप्सराओं (दुर्गध तथा पानी से उत्पन्न कृमियों)

को विनष्ट करते हैं। आपकी तीव्र गंध से हमें समस्त रोगरूप राक्षसों को दूर करते हैं ॥४,३७.२॥

नदीं यन्त्वप्सरसोऽपां तारमवश्वसम् ।
गुल्गुलूः पीला नलद्यौक्षगन्धिः प्रमन्दनी ।
तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥४,३७.३॥

जिस प्रकार नदी के पार उतरने की इच्छा वाले मनुष्य कुशल नाविक के पास जाते हैं, उसी प्रकार गुग्गुल, पीलु नलदी, औक्षगंधी और प्रमोदिनी आदि औषधियों के हवन से भयभीत होकर अप्सराएँ (जल से उत्पन्न कृमि) वापस लौटकर अपने निवास स्थान पर चली जाएँ और गतिहीन होकर पड़ी रहें ॥४,३७.३॥

यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः ।
तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥४,३७.४॥

हे अप्सराओ (जल में फैलने वाले कृमियो) ! जहाँ पर पीपल, वट और चिलखन आदि महान् वृक्ष होते हैं, वहाँ से आप अपने स्थान में लौट जाएँ और गतिहीन होकर पड़ी रहें ॥४,३७.४॥

यत्र वः प्रेङ्खा हरिता अर्जुना उत यत्राघाताः कर्कर्यः संवदन्ति ।
तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥४,३७.५॥

हे अप्सराओ (जल में उत्पन्न कृमियो) ! जहाँ पर आपके प्रमोद के लिए हिलने वाले हरे-भरे अर्जुन तथा श्यामल वृक्ष हैं और जहाँ पर आपके नृत्य के लिए कर-कर शब्द करने वाले कर्करी वृक्ष हैं, उस स्थान में आप वापस चली जाएँ और गतिहीन होकर पड़ी रहें ॥४,३७.५॥

एयमगन्न् ओषधीनां वीरुधां वीर्यावती ।
अजशृङ्ग्यराटकी तीक्ष्णशृङ्गी व्यृषतु ॥४,३७.६॥

विशेष प्रकार से उगने वाली लताओं में यह अत्यन्त बलशाली अजशृंगी कंजूसों और हिंसकों को उच्चाटन (उद्विग्न) करने वाली है । तीव्र गंधवाली और श्रृंगाकार फलवाली अजशृंगी पिशाचरूपी रोगों को नष्ट करे ॥४,३७.६॥

आनृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरापतेः ।
भिनद्मि मुष्कावपि यामि शेपः ॥४,३७.७॥

मोर के सदृश नृत्य करने वाले, गीतमय वाणियों वाले और हमें मारने की इच्छा वाले अप्सरापति गंधर्वो के अण्डकोशों को हम चूर्ण करते हैं और उनके प्रजनन अंगों को विनष्ट करते हैं ॥४,३७.७॥

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः ।
ताभिर्हविरदान् गन्धर्वान् अवकादान् व्यृषतु ॥४,३७.८॥

इन्द्र के लौह निर्मित हथियारों, जिनसे प्राणी भयभीत होते हैं और जिसमें सैकड़ों धारे हैं, उसके द्वारा 'अवका (सिवार) खाने वाले गन्धर्वो (कृमियों) को इन्द्रदेव नष्ट करें ॥४,३७.८॥

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीर्हिरण्ययीः ।
ताभिर्हविरदान् गन्धर्वान् अवकादान् व्यृषतु ॥४,३७.९॥

इन्द्र के स्वर्ण विनिर्मित हथियारों से, जिनसे प्राणी भयभीत होते हैं और जिनमें सैकड़ों धारें हैं, उसके द्वारा अवका (सिवार, शैवाल) खाने वाले गन्धर्वो को वह विनष्ट करें ॥४,३७.९॥

अवकादान् अभिशोचान् अप्सु ज्योतय मामकान् ।
पिशाचान्त्सर्वान् औषधे प्र मृणीहि सहस्व च ॥४,३७.१०॥

हे अजशृंगी औषधे ! शैवाल (काई-फंगस) खाने वाले, चारों तरफ से चमकने वाले और दुःख देने वाले गन्धर्वो को

जलाशयों में आप प्रकट करें ।आप उपद्रव करने वाले पिशाचों को विनष्ट करें और उन्हें दबाएँ ॥४,३७.१०॥

श्वैवैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः ।
प्रियो दृश इव भूत्वा गन्धर्वः सचते स्त्रियस्।
तमितो नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्यावता ॥४,३७.११॥

(इनमें से) एक (एक प्रकार के रोगाणु) कुत्ते के समान, एक बन्दर के समान और एक बालयुक्त बालक के समान होते हैं। यह गन्धर्व प्रिय दिखने वाले होकर स्त्रियों को प्राप्त (स्त्री रोगों के कारण होते हैं । हम मंत्र बल द्वारा उन गन्धर्वो को इन स्त्रियों के पास से दूर करते हैं ॥४,३७.११॥

जाया इद्वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो युयम् ।
अप धावतामर्त्या मर्त्यान् मा सचध्वम् ॥४,३७.१२॥

हे गन्धर्वो (वायु में फैलने वाले) ! आप की अप्सराएँ (जल में विकसित) आपकी पलियाँ हैं और आप ही उनके पति हैं,

इसलिए आप सब यहाँ से दूर हट जाएँ। आप अमरत्व धर्मी होकर मरणधर्मी मनुष्यों से न मिलें ॥४,३७.१२॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त ३८ – वाजिनीवान् ऋषभ सूक्त

अप्सराओं द्वारा अक्षशलाका की स्तुति

उद्भिन्दतीं संजयन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।
ग्लहे कृतानि कृण्वानामप्सरां तामिह हुवे ॥४,३८.१॥

उद्भेदन (शत्रु उच्छेदन अथवा ग्रन्थियों का निवारण करने वाली), उत्तम विजय दिलाने वाली, स्पर्धाओं में उतम (विजयी बनाने वाले) कर्मों की अधिष्ठात्री देवी अप्सराओं को हम आहूत करते हैं ॥४,३८.१॥

विचिन्वतीमाकिरन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।
ग्लहे कृतानि गृह्णानामप्सरां तामिह हुवे ॥४,३८.२॥

चयन करने में कुशल, श्रेष्ठ व्यवहार वाली अप्सरा तथा स्पर्धा में श्रेष्ठ (विजयी बनाने वाले) कर्म कराने वाली स्पर्धा की अधिष्ठात्री देवी का हम आवाहन करते हैं ॥४,३८.२॥

यायैः परिनृत्यत्याददाना कृतं ग्लहात्।
सा नः कृतानि सीषती प्रहामाप्नोतु मायया ।
सा नः पयस्वत्यैतु मा नो जैषुरिदं धनम् ॥४,३८.३॥

स्पर्धाओं में गतिशील, उत्तम प्रयासों को अंगीकार करने वाली वह (देवी) हमारे द्वारा किए जाने वाले कार्यों को अनुशासित करे । वह अपनी कुशलता से उन्नति प्राप्त करे तथा पयस्वती (पोषण देने वाली) होकर हमारे पास आए। हमारा यह श्रेष्ठ धन (दूसरों द्वारा) जीत न लिया जाए ॥४,३८.३॥

या अक्षेषु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च बिभ्रती ।
आनन्दिनीं प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुवे ॥४,३८.४॥

जो देवी (स्पर्धा के समय पिछड़ जाने पर होने वाले) शोक एवं क्रोध को भी अपने अक्षों (निर्धारित पक्ष या प्रयास) द्वारा आनन्द प्रदान करती हैं । ऐसी आनन्द और प्रमोद देने वाली अप्सराओं को हम आहूत करते हैं ॥४,३८.४॥

सूर्यस्य रश्मीन् अनु याः सञ्चरन्ति मरीचीर्वा या अनुसञ्चरन्ति ।
यासामृषभो दूरतो वाजिनीवान्त्सद्यः सर्वान् लोकान् पर्येति रक्षन् ।
स न ऐतु होममिमं जुसाणोऽन्तरिक्षेण सह वाजिनीवान् ॥४,३८.५॥

जो देवियाँ आदित्य रश्मियों अथवा प्रभा के विचरने के स्थान में विचरण करती हैं, जिनके सेचन समर्थ पति (सूर्यदेव) समस्त लोकों की सुरक्षा करते हुए, दूर अन्तरिक्ष तथा समस्त दिशाओं में विचरते हैं, वह सूर्यदेव अप्सराओंसहित हमारी हवियों को ग्रहण करते हुए, हमारे समीप पधारें ॥५॥

अन्तरिक्षेन सह वाजिनीवन् कर्कीं वत्सामिह रक्ष वाजिन् ।
इमे ते स्तोका बहुला एह्यर्वाङियं ते कर्कीह ते मनोऽस्तु
॥४,३८.६॥

हे बलवान् (सूर्यदेव) !आप कर्मठ बछड़ों या बच्चों की यहाँ पर सुरक्षा करें। यह आपके अनुग्रह (पर आश्रित) हैं, यह आपकी कर्म शक्ति है, आपका मन यहाँ रमे। आप हमारा नमन स्वीकार करें और हमारे निकट पधारें ॥४,३८.६॥

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्कीं वत्सामिह रक्ष वाजिन् ।
अयं घासो अयं व्रज इह वत्सां नि बध्नीमः ।
यथानाम व ईश्महे स्वाहा ॥४,३८.७॥

हे शक्तिवान् ! आप कर्मठ बछड़ों की यहाँ पर सुरक्षा करें और उनका पालन करें। यह गोशाला है। यह उनके लिए घास है, यहाँ हम बछड़ों को बाँधते हैं। हमारा जैसा नाम है, उसी के अनुसार हम ऐश्वर्य पाएँ । म आपके प्रति समर्पित हैं ॥४,३८.७॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त ३९- सन्नति सूक्त

अग्नि, वायु, सूर्य आदि की प्रशंसा

पृथिव्यामग्नयह समनमन्त्स आर्ध्नोत्।
यथा पृथिव्यामग्नयह समनमन्न् एवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥४,३९.१॥

धरती पर अग्निदेव के सम्मुख समस्त प्राणी नमन करते हैं। वह अग्निदेव भी विनम्र हुए भूतों से समृद्ध होते हैं । जिस प्रकार धरती पर अग्निदेव के सम्मुख सब विनम्र होते हैं, उसी प्रकार हमें सम्मान देने के लिए हमारे सामने उपस्थित हुए लोग विनम्र हों ॥४,३९.१॥

पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः ।
सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।

आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥४,३९.२॥

पृथ्वी गौ है और अग्नि उसका बछड़ा है। वह धरती अग्निरूपी बछड़े से (हमें) अन्न, बल, अपरिमित आयु, सन्तान, पुष्टि और सम्पत्ति प्रदान करे । हम उसे हवि समर्पित करते हैं ॥४,३९.२॥

अन्तरिक्षे वायवे समनमन्त्स आर्ध्नोत्।
यथान्तरिक्षे वायवे समनमन्न् एवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥४,३९.३॥

अन्तरिक्ष में अधिष्ठाता देवता रूप में स्थित वायुदेव के सम्मुख सब विनम्र होते हैं और वह वायुदेव भी उनसे वृद्धि को प्राप्त होते हैं । जिस प्रकार अन्तरिक्ष में वायुदेव के सम्मुख सब विनम्र होते हैं, उसी प्रकार हमें सम्मान देने के लिए हमारे सम्मुख उपस्थित हुए लोग भी विनम्र हों ॥४,३९.३॥

अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वत्सः ।
सा मे वायुना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥४,३९.४॥

अभिलषित फल प्रदान करने के कारण अन्तरिक्ष गौ के समान है और वायुदेव उसके बछड़े के समान हैं। वह अन्तरिक्ष वायुरूपी अपने बछड़े से (हमें) अन्न, बल, अपरिमित आयु, सन्तान, पुष्टि और धन प्रदान करे । हम उसे हवि समर्पित करते हैं ॥४,३९.४॥

दिव्यादित्याय समनमन्त्स आर्ध्नोत्।
यथा दिव्यादित्याय समनमन्न् एवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥४,३९.५॥

द्युलोक में अधिपति रूप में स्थित सूर्यदेव के सम्मुख समस्त द्युलोक निवासी विनम्र होते हैं और वह सूर्यदेव भी उनके द्वारा वृद्धि को प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार द्युलोक में सूर्यदेव के सम्मुख सब विनम्र होते हैं, उसी प्रकार हमें

सम्मान देने के लिए हमारे सम्मुख उपस्थित लोग विनम्र हों ॥४,३९.५॥

द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः ।
सा म आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥४,३९.६॥

इच्छित फल प्रदान करने के कारण द्युलोक गौ के समान है और सूर्यदेव उसके बछड़े के समान हैं । वह द्युलोक सूर्यरूपी अपने बछड़े के द्वारा (हमें) अन्न- बल, अपरिमित आयु, सन्तान, पुष्टि और धन प्रदान करे, हम, उसे हवि समर्पित करते हैं ॥४,३९.६॥

दिक्षु चन्द्राय समनमन्त्स आर्ध्नोत्।
यथा दिक्षु चन्द्राय समनमन्न् एवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥४,३९.७॥

पूर्व आदि दिशाओं में अधिष्ठाता देवता रूप में स्थित चन्द्रमा के सम्मुख समस्त प्रजाएँ विनम्र होती हैं और चन्द्रलोक भी उनके द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार दिशाओं में चन्द्रमा के सम्मुख सब विनम्र होते हैं, उसी प्रकार हमें सम्मान देने के लिए, हमारे सम्मुख उपस्थित लोग विनम्र हों ॥४,३९.७॥

दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः ।
ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहामायुः प्रथमं प्रजां पोसं रयिं स्वाहा ॥४,३९.८॥

दिशाएँ गौ हैं और चन्द्रमा उनका बछड़ा है। वह दिशाएँ चन्द्रमारूपी बछड़े के द्वारा (हमें) अन्न, बल, अपरिमित आयु, सन्तान, पुष्टि और धन प्रदान करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥४,३९.८॥

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उ ।
नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म भागम् ॥४,३९.९॥

लौकिक अंगिरा सम्बन्धी अग्नि में मन्त्र बल द्वारा देवरूप अग्नि, प्रविष्ट होकर निवास करते हैं। वह 'चक्षु और 'अंगिरा' आदि ऋषियों के पुत्र हैं। वह मिथ्यापवाद से बचाने वाले हैं। हम उन्हें नमनपूर्वक हवि प्रदान करते हैं, देवों के हविर्भाग को मिथ्या नहीं करते ॥४,३९.९॥

हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
सप्तास्यानि तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यम् ॥४,३९.१०॥

हे समस्त उत्पन्न प्राणियों को जानने वाले अग्निदेव ! आप समस्त कर्मों के ज्ञाता हैं । हे जातवेदा अग्ने ! आपके जो सात मुख हैं, उनके लिए हम मन और अन्त:करण द्वारा पवित्र हुए हवि को समर्पित करते हैं, आप उस हवि को ग्रहण करें ॥४,३९.१०॥

॥अथर्ववेद – चतुर्थ काण्डम्॥

सूक्त ४० – शत्रुनाशन सूक्त

जातवेद अग्नि की स्तुति

यह पुरस्ताज्जुह्वति जातवेदः प्राच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
अग्निमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥४,४०.१॥

हे जातवेदा अग्निदव ! जो शत्रु पूर्व दिशा में आहुति देकर अभिचार कर्म द्वारा हमें विनष्ट करने की कामना करते हैं, वह शत्रु आपके पास जाकर पराङ्मुख होते हुए कष्ट भोगें । आभिचारिक कर्म करने वाले इन शत्रुओं को हम इस प्रतिसर कर्म द्वारा विनष्ट करते हैं ॥४,४०.१॥

यह दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो दक्षिणाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।

यममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेना प्रतिसरेण हन्मि ॥४,४०.२॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! जो शत्रु दक्षिण दिशा में आहुति देकर अभिचार कर्म द्वारा दक्षिण दिशा से हमें विनष्ट करना चाहते हैं, वह शत्रु यमदेव के समीप जाकर पराङ्मुख होते हुए कष्ट भोगें । उन अभिचारी शत्रुओं को हम इस प्रतिसर कर्म द्वारा विनष्ट करते हैं ॥४,४०.२॥

यह पश्चाज्जुह्वति जातवेदः प्रतीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्। वरुणमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥४,४०.३॥

हे जातवेदा अग्ने ! जो शत्रु पश्चिम दिशा में आहुति देकर पश्चिम दिशा से हमें विनष्ट करने की कामना करते हैं, वह शत्रु वरुणदेव के समीप जाकर पराभूत होते हुए कष्ट भोगें । उन अभिचारी शत्रुओं को हम इस प्रतिसर कर्म द्वारा विनष्ट करते हैं ॥४,४०.३॥

य उत्तरतो जुह्वति जातवेद उदीच्या शोऽभिदासन्त्यस्मान्।
सोममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि
॥४,४०.४॥

हे जातवेदा अग्ने ! जो शत्रु उत्तर दिशा में आहुति देकर अभिचार कर्म द्वारा उत्तर दिशा से हमें विनष्ट करने की कामना करते हैं, वह शत्रु सोमदेव के समीप जाकर पराभूत होते हुए कष्ट भोगें । उन अभिचारी शत्रुओं को हम इस प्रतिसर कर्म द्वारा विनष्ट करते हैं ॥४,४०.४॥

यहऽधस्ताज्जुह्वति जातवेद उदीच्या शोऽभिदासन्त्यस्मान्।
भूमिमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि
॥४,४०.५॥

हे जातवेदा अग्ने ! जो शत्रु नीचे की, ध्रुव दिशा में आहुति देकर अभिचार कर्म द्वारा नीचे की ध्रुव दिशा से हमें विनष्ट करने की कामना करते हैं, वह शत्रु भूमि के समीप जाकर

पराभूत होते हुए कष्ट भोगे । उन अभिचारी शत्रुओं को हम इस प्रतिसर कर्म द्वारा विनष्ट करते हैं ॥४,४०.५॥

यहऽन्तरिक्षाज्जुह्वति जातवेदो व्यध्वाया शोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
वायुमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥४,४०.६॥

हे जातवेदा अग्ने ! जो शत्रु द्यावा-पृथिवी के बीच अन्तरिक्ष में आहुति देकर अभिचार कर्म द्वारा अन्तरिक्ष दिशा से हमें विनष्ट करने की कामना करते हैं, वह शत्रु वायुदेव के समीप जाकर पराभूत होते हुए कष्ट भोगें । उन शत्रुओं को हम इस प्रतिसर कर्म द्वारा विनष्ट करते हैं ॥४,४०.६॥

य उपरिष्टाज्जुह्वति जातवेद ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
सूर्यमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥४,४०.७॥

हे जातवेदा अग्ने ! जो शत्रु ऊपर की दिशा में आहुति देकर अभिचार कर्म द्वारा ऊर्ध्व दिशा से हमें विनष्ट करने की कामना करते हैं, वह शत्रु सूर्यदेव के समीप जाकर पराभूत होते हुए कष्ट भोगें । उन शत्रुओं को हम प्रतिसर कर्म द्वारा विनष्ट करते हैं ॥४,४०.७॥

यह दिशामन्तर्देशेभ्यो जुह्वति जातवेदः सर्वाभ्यो दिग्भ्योऽभिदासन्ति अस्मान् ।
ब्रह्म त्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥४,४०.८॥

हे जातवेदा अग्ने ! जो शत्रु उप दिशाओं में आहुति देकर अभिचार कर्म द्वारा दिक्कोणों से हमें विनष्ट करने की कामना करते हैं, वह शत्रु परब्रह्म के समीप जाकर पराभूत होते हुए कष्ट भोगें। उन शत्रुओं को हम प्रतिसर कर्म द्वारा विनष्ट करते हैं ॥४,४०.८॥

॥इति चतुर्थ काण्डम्॥